ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—७६

शाइरीके नये मोड़

पहला मोड़

[१९४६ ई० से मार्च १९५८ तककी शाइरीकी एक झलक]

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

मेरे अज्ञात हितैषी !

न जाने इस वक्त तुम कहाँ हो ? न मैं तुम्हें जानता हूँ और न तुम मुझे जानते हो, फिर भी तुम कभी-कभी याद आते रहे हो। बक़ौल फ़िराक़ गोरखपुरी—

> मुद्दतें गुज़रीं तेरी याद भी आई न हमें
> और हम भूल गये हों, तुझे ऐसा भी नहीं

तुम्हें तो २६ जनवरी १६२१ ई० की वह रात स्मरण नहीं होगी, जब कि तुमने मुझे अन्धा कहा था। मगर मैं वह रात अभी तक नहीं भूला हूँ। रौलट-ऐक्टके आन्दोलनसे प्रभावित होकर मई १६१६ में चौरासी मथुराके जैन-महाविद्यालयसे मध्यमाकी पढ़ाई छोड़कर मैं आगया था और काँग्रेसी-कार्योंमें मन-ही मन दिलचस्पी लेने लगा था। उन्हीं दिनों सम्भवतः २६ जनवरी १६२१ ई० की बात है, रातको चाँदनी-चौकसे गुज़रते-समय बल्लीमारानके कोनेपर चिपके हुए काँग्रेसके उर्दू-पोस्टरको खड़े हुए बहुत से लोग पढ़ रहे थे। मैं भी उत्सुकतावश वहाँ पहुँचा और उर्दूसे अनभिज्ञ होनेके कारण तुमसे पूछ बैठा—"बड़े भाई ! इसमें क्या लिखा हुआ है" ? तुमने फौरन दन्दान शिकन जवाब दिया—"अमाँ अन्धे हो, इतना साफ पोस्टर भी नहीं पढ़ा जाता।" जवाब सुनकर मैं खिसियाना-सा खड़ा रह गया। घर आकर ग़ैरतने तख़्ती और उर्दूका क़ायदा लानेको मजबूर कर दिया।

अब मैं कई बार सोचता हूँ कि कहीं फिर तुमसे मुलाक़ात हो जाये तो मेरी आँखोंकी रही सही धुन्ध भी दूर हो जाये। लेकिन यह मुमकिन नहीं। अतः उस मीठे तानेकी स्मृतिस्वरूप यह कृति तुम्हें भेंट कर रहा हूँ। जहाँ भी हो, मेरे अज्ञात हितैषी ! अपने इस अन्धे पथिककी भेंट स्वीकार करना।

१ मई १६५८ ई०] —गोयलीय

समा-ख़राशी [समयका अपव्यय]

१. 'शाइरीके नये मोड़' के अन्तर्गत जिस शाइरीका परिचय दिया जायेगा, उसका प्रचलन १६३५ ई० के आस-पास हुआ। १६३५ से १६५८ तक शाइरीने कई मोड़ लिये हैं। प्रस्तुत प्रथम मोड़में १६४६ से मार्च १६५८ ई० तककी शाइरीका बहुत संक्षेपमें उल्लेख हो सका है। आगेके मोड़ोंमें इस २२ २३ वर्षकी शाइरीकी गति विधिका यथा-स्थान अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा। यह प्रथम मोड़ तो केवल उसकी झलक मात्र है।

२. इस दौरमें यूँ तो सभी तरहकी शाइरीका विकास हुआ, किन्तु तरक्की-पसन्द शाइरीका बहुत अधिक विकास हुआ। इसे नई शाइरी, इशतराकी शाइरी अथवा नया अदब भी कहते हैं। हिन्दीमें कहना चाहें तो प्रगतिशील शाइरी, साम्यवादी शाइरी या नवीन शाइरी कह सकते हैं।

३. तरक्क़ी पसन्द शाइरी सिर्फ़ उसी शाइरीको कहा जाता है, जो मार्क्सवादियों, कम्युनिस्टों अथवा रूसके प्रबल अनुयायियों-द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। तरक्क़ीपसन्द शाइरों और नये अदबके लेखकोंका अपना बहुत बड़ा समूह है, अपनी निजी विचारधाराएँ हैं और अपने पक्षके प्रचारका एक ढंग है। अपनेसे भिन्न विचार रखनेवाले शाइर और लेखकको वे गैर-तरक्क़ी-पसन्द कहते हैं। जो शाइर या लेखक मार्क्सवादी या रूसी विचारधाराके पूर्ण समर्थक नहीं हैं; वे चाहे कितनी ही नवीन और उन्नतिपूर्ण रचनाएँ करें, तरक्क़ी-पसन्द शाइर उन्हें अपने समूहमें सम्मिलित नहीं करते।

४. वर्त्तमान युगमें यूँ तो सभी विचारधाराओंके शाइर अपनी रुचिके अनुकूल—ग़ज़ल, नज़्म, रुबाई, क़िते, आज़ाद नज़्म (मुक्त छन्द) सॉनेट, गीत आदि कह रहे हैं, परन्तु 'शाइरीके नये मोड़' के मोड़ोंमें

निम्न विचारधाराओंके मुख्य मुख्य प्रतिनिधि शाइरोंका परिचय एवं कलाम दिया जायेगा—

वर्त्तमानयुगीन शाइर—परम्परानुसार शाइरीमें किसी उस्तादके शिष्य। व्याकरण-छन्दशास्त्रकी सीमामें रहते हुए नवीनताके समर्थक, साथ ही प्राचीन अच्छी बातोंके अनुयायी।

नवीन शाइर—अपनी आयु और विचारोंके कारण इसी युगके शाइर। *युगानुसार शाइरीमें नवीन-नवीन प्रयोग करते हैं। हर उन्नति* और सुधारके समर्थक, किन्तु रूसी विचारधाराके अन्ध अनुयायी नहीं।

तरक्की-पसन्द शाइर—हरेक पहलूसे केवल रूसके अनुयायी।

तरक्की पसन्द-विरोधी शाइर—जो प्रत्येक प्राचीन परम्पराका मखौल उड़ाते हैं, या भिन्न मत रखनेवालोंको बुर्जुआ या ग़ैर तरक्कीपसन्द कहते हैं। उन तरक्कीपसन्द शाइरों या नये अदबके लेखकोंके विरोधी।

५. *तरक्की पसन्द और ग़ैर-तरक्की पसन्द शाइरी क्या है?* नई-शाइरी और पुरानी शाइरीमें क्या अन्तर है? यह तो वे विज्ञ पाठक सरलतासे समझ ही लेंगे, जिन्होंने 'शेरो शाइरी' 'शेरो-सुखन' पाँचों भाग, 'शाइरीके नये दौर' और प्रस्तुत 'नवीन मोड़' का ध्यान पूर्वक अध्ययन किया है। फिर भी आगेके मोड़ोंमें उत्तरोत्तर यथावश्यक जानकारी सुलभ होती जायगी।

६. सन् १९४६ से मार्च १९५८ तक जो ८–१० उर्दू-मासिक पत्र मेरे अवलोकनमें आते रहे हैं। तक़रीबन ७००–८०० अंकोंमें से अपनी रुचिके अनुकूल जो कलाम डायरीमें नोट करता रहा हूँ, उनमें से बहुत-से अशआर ऐसे हैं, जिन्होंने मुझे तड़पा-तड़पा दिया है और एक एक शेरने गुनगुनानेके लिए कई-कई रोज मजबूर कर दिया है। यह सब कलाम 'नज़्मे अदन' परिच्छेदमें दे दिया गया है। कुछ पूरी या अधूरी गजलें और नज़्में उन पाठकोंके मनोरंजनार्थ भी देनी पड़ी हैं, जिनका

उलाहना था कि कुछ पूर्ण भी देनी चाहिएँ, ताकि उन्हें गाया जा सके। कुछ अशआर केवल इसलिए दिये गये हैं, ताकि पाठक अन्तर समझ सकें और तुलनात्मक अध्ययन करते समय उदाहरण स्वरूप काम आ सकें।

७. प्रस्तुत मोड़के 'नज्मे-अदब' परिच्छेदमें इस युगके ख्याति प्राप्त प्रतिनिधि शाइरोंका कलाम जान बूझकर नहीं दिया गया है, क्योंकि उनका विस्तृत परिचय एवं कलाम दूसरे भागमें दिया जा रहा है। उक्त परिच्छेदमें दिये गये कुछ उदीयमान और कुछ उलाहना मर्तबेके ऐसे शाइर भी हैं, जिनका विस्तृत परिचय एवं कलाम कभी-न कभी दिये विना मुझे चैन नहीं आयेगा।

८. प्रस्तुत मोड़में भिन्न भिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले शाइरोंके कलामकी यत्र-तत्र झलक मिलेगी। आजका शाइर ग़ज़लमें भी इन्क़िलाबी, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, साम्यवादी आदि विचारोंकी पुट दिये बग़ैर नहीं रहता। प्रेयसीसे वस्लो-हिज्रकी बातें करते हुए भी ग़मे-दौराँ नहीं भूलता। मिलनके तनिक-से क्षणोंमें भी क्रान्तिकारी भावना प्रकट कर देता है। नवीन शाइरीने अपना लबो-लहजा कितना बदल दिया है और वह कितने मोड़ोंमें गुज़रती हुई कहाँ से-कहाँ आ पहुँची है? इसका आभास प्रस्तुत भागसे मिलना प्रारम्भ हो जायगा। इस युगके सभी विचारधाराओंके मुख्य-मुख्य प्रतिनिधियोंका परिचय एवं कलाम आगेके भागोंमें देनेके बाद अन्तिम भागमें इस युगका इतिहास और अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा।

९. नज्मोंके ऊपर शीर्षक हैं और ग़ज़लें बग़ैर शीर्षककी हैं। अतः नज्म और ग़ज़लमें क्या अन्तर है, यह सरलतासे समझा जा सकेगा।

१०. जिन मासिक पत्रोंसे एक भी शेर लिया है। आभार-स्वरूप उनका नाम कलामके नीचे दे दिया गया है, किन्तु कुछ अशआरके नीचे नाम नहीं दिये जा सके। इसका कारण यही है कि किसी अंकमें २-४ शाइरोंके शेर नोट करने पर अन्तके शेरपर पत्रका नाम अंकित किया गया। डायरीमें नोट करते समय यह ख़याल-ख़्वाब भी न था कि

स्थान्तःसुखायके लिए की गई सचित पूँजी भी ज़मींदारी प्रथाके समान जनताकी हो जायगी। पुस्तकमें देते समय पहिले अक्षरवार देनेका विचार नहीं था, किन्तु पुनरावृत्तिके भयसे और उपयोगिताकी दृष्टिसे अक्षरवार रखना ही उचित प्रतीत हुआ। अतः जब अक्षरवार कलामका चयन हुआ तो पूरी सावधानी बरतते हुए भी ऊपरके शेरोंके नीचे पत्रोंका नाम कहीं-कहीं अंकित करनेसे रह गया। कहीं कहीं ऐसा भी हुआ है कि एक ही शाइरका कलाम कई अंकोंसे चुना गया है, किन्तु अक्षरवार दिये जानेके कारण उन सब अंकोंका उल्लेख न होकर एक-दो का ही हुआ है। प्रस्तुत पुस्तकमें दिये गये कलामको जो पाठक पूर्ण देखना चाहें, वह उसके नीचे दिये गये पत्रको मँगाकर देखें, मुझे लिखनेका कष्ट न करें।

११. जिस शाइरका कलाम मुझे इन बारह वर्षोंमें पत्र-पत्रिकाओंके अम्बारमें जितना उपलब्ध हुआ, उसमें से अपनी रुचिके अनुसार चयन-कर लिया, जिनका कम उपलब्ध हुआ, कम चयन हुआ। केवल यही कारण है कि किसी शाइरका अधिक और किसीका कम कलाम दिया गया है।

> 'सौदा' ! ख़ुदाके वास्ते कर क़िस्सा मुख़्तसर।
> अपनी तो नींद उड़ गई तेरे फ़साने से॥

डालमियानगर (बिहार)
१ मई १९५८ ई०

विषय-सूची

नई लहर

नवीन धारा

नरमेध यज्ञ

देश-प्रेम

नवीन-चेतना

बज़्मे-अदब

शाइरीके नये मोड़

[१९४६ से १९५७ तककी नवीन शाइरी]

नई लहर
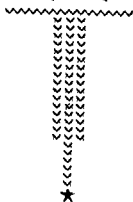
१ भारत-विभाजन
२ स्वराज्य-प्राप्ति
३ राष्ट्र-पिताकी शहादत
४ प्रेरणात्मक-शाइरी

इन बारह वर्षोंमें उर्दू शाइरीमें अभूतपूर्व परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हुआ है। उसका लबोलहजा बदल गया है, सोचने और विचारनेके दृष्टिकोणमें अन्तर आ गया है। इन बारह वर्षोंमें हुई इन तीन मुख्य घटनाओं—१ भारत विभाजन, २ स्वराज्य-प्राप्ति, ३ राष्ट्र-पिताकी शहादत—पर बहुत अधिक कहा गया है, और कहा जा रहा है।

यदि उक्त तीनों विषयोंकी नज़्मों और ग़ज़लोंका संकलन किया जाय तो १०–१२ पोथे तैयार हो सकते हैं। यहाँ केवल एक भागमें अत्यन्त संक्षेपमें उल्लेख किया जा रहा है। इस दौरके नवयुवक शाइर नज़्म और गजल अक्सर दोनों कहते हैं। अतः उद्धरणोंमें ग़जलों-नज़्मों दोनोंके ही अशआर दिये जा रहे हैं।

भारत-विभाजन

भारत-विभाजन मुस्लिम लीगकी जिदके कारण हुआ। उसकी इस साम्प्रदायिक दूषित मनोवृत्तिका कितना घातक परिणाम हुआ? कितना बड़ा नरहत्याकाण्ड हुआ? कितनी युवतियोंकी इस्मतदरी हुई? कितने बालक बिलख बिलखकर मरे? कितने धार्मिक स्थान और लोकोपयोगी संस्थाएँ नष्ट कर दी गईं और कितनी अधिक संख्यामें धन बरबाद हुआ, इन सबका लेखा जोखा भले ही हमारे पास सुरक्षित नहीं है। फिर भी शाइरोंने जो कुछ कहा है, यदि वही सब एकत्र कर लिया जाय तो एक प्रामाणिक इतिहास बन जायगा। संसारमें इस तरहका काण्ड इससे पूर्व नहीं हुआ। भारत-विभाजनमें पूर्व मुसलिमलीगकी विषैली मनोवृत्तिको आनन्दनारायण मुल्लाने यूँ नज़्म किया था—

जहाँसे अपनी हकीकत छुपाये बैठे हैं
यह लीगका जो घरौन्दा बनाये बैठे हैं
....

भड़क रही है तआम्मुबकी[1] दिलमें चिनगारी
चरागे-अम्लो-हक़ीक़त बुझाये बैठे हैं
हरेकके दीन पै इल्ज़ामे-काफ़िरी रखकर
हरेक कुफ़्रपै ईमान लाये बैठे हैं
सजाये बैठे हैं दूकाँ वतन-फ़रोशीकी
हरेक चीज़की क़ीमत लगाये बैठे हैं
क़फ़समें[2] उम्रमें कटे जीमें है गुलशनोंके
चमनकी राहमें काँटे बिछाये बैठे हैं
नहीं शरीक मुसीबतमें हिन्दकी लेकिन—
इराक़ो-शाममें रिश्ते मिलाये बैठे हैं
गिराई एक पसीनेकी बून्द भी न कभी
मता-ए-क़ौममें[3] हिस्सा बटाये बैठे हैं

....

ख़ुदाकी शान इसी सरकी रफ़अ़तोंपै[4] गरूर
जो आस्ताने-अदूपर[5] झुकाये बैठे हैं

....

उक्त शेर नज़्मके हैं। गज़लका क्षेत्र सीमित है, उसका अन्दाजे-बयान भी नज़्मसे भिन्न होता है और एक शेरमें ही गज़लकी ज़बानमें सम्पूर्णभाव व्यक्त करना होता है। गज़लके निम्न शेरमें मुस्लिम लीगकी इसी मनोवृत्तिको देखिए 'मुल्ला' किस ख़ूबीसे व्यक्त करते हैं—

---

१. द्वेष भावकी, २. पराधीनतामें; ३. देशके धनमें; ४. उच्चतापर घमण्ड; ५. शत्रुकी चौखटपर।

जोशे-तक़सीम वारिसोंका न पूछ।
जिद यह है कि माँकी लाश कटके बटे

माँकी लाशको काटकर बाँटनेवालोंसे सावधान रहनेके लिए गजलके दो शेरमें मुल्ला चेतावनी देते हुए फर्माते हैं—

बुलबुले-नादाँ! ज़रा रंगे-चमनसे होशयार।
फूलकी सूरत बनाये सैकड़ो सैयाद[1] है॥
आशियाँ वालोंकी अब गुलशनमें गुञ्जाइश नहीं।
आज सहने-बाग़में या सैद[1] या सैयाद[2] है॥

जब इन सैयादोंने चमन बाँट लिया तो मुल्ला इन व्यथाभरे स्वरोंमें कराह उठे—

यूँ दिल भी कभी होते है जुदा, 'मुल्ला' यह कैसी नादानी?
हर रिश्ता ज़ाहिर तोड़ दिया, ज़जीरे-निहानी[3] भूल गये॥

जञ्जीरे निहानी तोड देने की नादानीका परिणाम क्या हुआ? यह भी मुल्ला साहबके घायल दिलसे पूछिए—

कैसा ग़ुबार चश्मे-मुहब्बतमें आ गया।
सारी बहार हुस्नकी मिट्टीमें मिल गई॥

मुल्ला साहबने इस एक शेरमे सभी कुछ कह दिया। कुछ भी कहना शेष नही रहा। भारत विभाजनमे स्वराज्य प्राप्तिका सब मजा किरकिरा हो गया। वे खिज़ानसीब जो बहारके न जाने कबसे मुन्तज़िर थे और दिलोंमे हज़ारा अरमान छिपाये हुए थे। बहार आते ही बरबाद हो गये। बकौल किसी के—

---

१. शिकार; २. शिकारी, ३. अन्तरंगका बन्धन।

ख़ामोश हो गया है चमन बोलता हुआ

अनगिनत बसे-बसाये घर वीरान हो गये, असंख्य फलते फूलते परिवार उजड़ गये। लाखों युवक भरी जवानीमें शहीद कर दिये गये। लाखों युवतियाँ अपहृत कर ली गईं। लाखों वृद्धाएँ निपूती हो गईं, लाखों माईके लाल यतीम होकर बिलखते फिरने लगे। लाखों वृद्ध, अशक्त, अपाहिज निराश्रित होकर एड़ियाँ रगड़ रगड़कर जीवित रहनेको बाध्य हुए। समस्त देश श्मशान सा बन गया—

देते हैं सुराग़ फ़स्ले-गुलका।
शाख़ोंपे जले हुए बसेरे॥

—अज्ञात

आँखोंसे अक्सर उनकी आँसू निकल गये हैं।
क्या-क्या भरे गुलिस्ताँ सावनमें जल गये हैं॥
आज़ादियाँ तो देखीं, बरबादियाँ भी देखो।
कैसे हसीन गुलशन काँटोंपे ढल गये हैं॥

—अज्ञात

कुछ इस तरहसे बहार आई है कि बुझने लगे।
हवा-ए-लाल-ओ-गुलके चराग़े-दीद-ओ-दिल॥

—अज्ञात

तमाम अह्ले-चमन कर रहे हैं यह महसूस।
बहारे-नौका तबस्सुम[1] तो सोगवार-सा[2] है॥

—ज़ोहरा निगाह

१. नई नवेली बहारकी मुसकान, २. शोकाकुल सा।

बहारे-नौका तबस्सुम सोगवार सा क्यों है और फला फूला चमन वीरान किन लोगोंने कर दिया ? यह जाननेके लिए 'अदम' की 'दस्तक' नज्मके यह शेर पर्याप्त होंगे—

आज शायद भेड़िये फिर घूमते हैं शहरमें
भूककी चिनगारियाँ लेकर दहाने-कहरमें[1]
मस्जिदोंसे अज़दहे[2] निकले हैं बलखाते हुए
मन्दिरोंसे जलजले उट्ठे हैं थर्राते हुए
आँधियोंका भूत उठा है दाँत चमकाता हुआ
मौतका जबड़ा खुला है आग बरसाता हुआ
यह मनमख़ानोंके हीरो[3], यह हरमके शहसवार[4]।
बनके निकले हैं ख़ुदाओंकी तबीअतका ग़ुबार ॥

....

आ गया है डाकुओंका काफ़िला[5] दहलीज़पर
बुझ चुकी हैं अम्नकी क़न्दील[6] सीना पीटकर

अपने अन्धे अनुयायियोंको साम्प्रदायिक नेता अबलाओंका सतीत्व लूट लेनेके लिए किस प्रकार फतवे देते थे ! यह भी 'अदम' साहबकी ज़बानेमुबारकसे सुनिए—

देखते क्या हो बदहवासीसे ?
क्या हुआ है तुम्हारी गैरतको
इतनी ताख़ीर[7] क्यों इताअतमें[8]
हुक्म सिर्फ़ एक बार होता है

---

१. मृत्युरूपी मुखमें; २. अजगर; ३. मन्दिरोंके नेता; ४. मसजिदोंके हिमायती, ५. गिरोह, दल, ६. शान्ति-दीप शिखा; ७. विलम्ब; ८. आज्ञा पालनमें ।

काट दो इनकी छातियोंके नुमूद[1]
छातियाँ हैं कि जाँ गुदाज़ सब्द[2]
बाँधदो इनके बाल खम्भोंसे
और इनके हसीन जिस्मोंपर
ताज़ियानोंके[3] फूल बरसाओ
बेटियाँ हैं यह उन दरिन्दोंकी
जो तुम्हारे लहूके प्यासे हैं

देखते क्या हो बदहवासी से ?
ऐसी भरपूर और लज़ीज़ गिज़ा
रोज कब दस्तयाब होती है
पिल पड़ो इन जवाँ गज़ालों पर[4]
इनकी आहो-बुकापै[5] मत जाओ
उनकी आहो-बुकापै ग़ौर करो
जिनको तुम छोड़ आये हो पीछे
और जो दुश्मनोंके पहलूमें
हँस रही हैं तुम्हारी ग़ैरतपर
जिनके नज़दीक अब तुम्हारा वजूद[6]
एक ख़ंज़ीरके[7] बराबर है

....

जब दिन दहाड़े अबलाओंकी इसतरह लूट मची हो, तब अपना देश छोड़ जानेके सिवा और उपाय भी क्या था ? मगर जाने आनेके मार्ग भी

१. स्तनाके अंश; २. मनको हिलोर देनेवाले पात्र; ३. चाबुकोंके ४. मृगनयनियोंपर; ५. रुदन विलापपै; ६. अस्तित्व; ७. जंगली सूअरके ।

तो अवरुद्ध थे। सर्वत्र आततायी-ही आततायी विचर रहे थे। अबलाओंकी उस दयनीय स्थितिका 'अदम' साहबने देखिए कैसा सजीव चित्रण किया है—

आ बहन छोड़ जायें अपना देस
अब इसे आँधियोंने घेरा है
कोई तेरा न कोई मेरा है
हर तरफ़ ख़ून और अँधेरा है
आ बहन छोड़ जायें अपना देस

अब यहाँ क़हरमान[1] बसते हैं
आदमी-आदमीको डसते हैं
रहम मँहगा है ज़ुल्म सस्ते हैं
आ बहन छोड़ जायें अपना देस

आह! लेकिन यह आस भी तो नहीं
बच सकें आगसे पनाहगज़ीं[2]
मेरी तजवीज है यहीं न कहीं
किसी अन्धे कुएँकी लहरोंमें
साँसको बन्द करके सो जायें

मालूम होता है कि इन्सान दरिन्दे बन गये हैं और अपने खूँख़ार जबड़े खोले हुए घूम रहे हैं—

यह दुनिया है या है दरिन्दोंकी[3] बस्ती?
है ख़ाइफ़[4] यहाँ आदमी आदमीसे
—एजाज़ सद्दीक़ी

१. आफ़तके परकाले, आततायी, २. शरणार्थी; ३. जंगली जानवरोंकी; ४. भयभीत।

जब इन्सान दरिन्दे और वहशी बन गये, तब उनके खूनी पंजोंने क्या-क्या ज़ुल्मो सितम किये। यह 'अर्श' मलसियानी साहबसे मालूम कीजिए—

बस्तियोंकी बस्तियाँ बरबादो-वीराँ हो गईं
आदमीकी पस्तियाँ, आख़िर नुमायाँ हो गईं
क़त्लो-गारतके हज़ारों दाग़ लेकर बहशतें
आज सुनते हैं कि फिर इस्मतबदामाँ हो गईं

इस बरबादी और वीरानीका दृश्य ग़ज़लके एक शेरमें जगन्नाथ साहब 'आज़ाद' देखिए किस ख़ूबीसे खींचते हैं—

बस एक नूर झलकता हुआ नज़र आया।
फिर उसके बाद न जाने चमनपै क्या गुज़री॥

मनुष्योंकी यह रक्त लोलुपता देखकर दरिन्दे भी सहम गये—

दरिन्दोंमें हुआ करती है सरगोशियाँ इसपर।
कि इन्सानोंसे बढ़कर कोई ख़ूँ आशाम क्या होगा॥

—आर्द्रीय मालीगाँवी

भारत विभाजनका परिणाम यह हुआ कि भारतीय हिन्दू-मुसलमान अपने ही देशमें विदेशी बन गये। मुस्लिमलीगी अधिकृत क्षेत्र वहाँके हिन्दुओंके लिए और कॉंग्रेसी अधिकृत क्षेत्र मुसलमानोंके लिए विदेश हो गया[1] भाई-भाईका शत्रु हो गया। हिन्दू-मुसलमान दोनों अपने जन्म-स्थानों और पूर्वजोंकी स्मृतियोंसे बेगाना देश समझनेके लिए मजबूर हो गये—

तू अपनेको ढूँढ रहा है दुनियाँके मामूरेमें।
यह बेगाना देस है ऐ दिल ! इसमें सब बेगाने हैं॥

---

१. हर्ष है कि स्वतंत्र होते ही भारतने अपनेको निरपेक्ष देश घोषित कर दिया और यहाँ हर धर्म और सम्प्रदायके व्यक्ति प्रेम पूर्वक बिना किसी भेद भावके रहते हैं।

देश छोड़कर लाखों नर नारियोंके बिलखते हुए काफिले इधरसे उधर आ-जा रहे हैं, परन्तु न तो किसीको मंज़िलका पता है, न किसीको रास्ताका, फिर भी बच्चोंको कान्धोंपे लादे, बूढ़े माँ-बापको सहारा दिये बढ़े जा रहे हैं—

> मंज़िलसे भी नावाकिफ़ है, राहसे भी आगाह नहीं।
> अपनी धुनमें फिर भी रवाँ हैं, यह भी अजब दीवाने हैं॥

—जगन्नाथ आज़ाद

उन दिनों धर्मोन्माद और मजहबी दीवानगीका यह आलम था कि उस विषाक्त वातावरणमें भले आदमियोंका जीना दूभर हो गया था—

> जो धर्मपै बीती देख चुके, ईमाँपै जो गुज़री देख चुके।
> इस रामो-रहीमकी दुनियाँमें इन्सानका जीना मुश्किल है॥

—अर्श मलसियानी

जब रामो-रहीमके बन्दे जहरीले नाग बन जायें, तब उनसे बचा भी कैसे जाय?

> डंक निहायत ज़हरीले हैं, मज़हब और सियासतके[1]।
> नागोंकी नगरीके वासी! नागोंकी फुकार तो देख॥

—अर्श मलसियानी

इन जहरीले धर्मके ठेकेदारों और राजनैतिक कुचक्रियोंके कारनामे उजागर किये जायें तो—

> ग़र्क़में-बातिन ख़ुदापरस्तोंके[2]
> मन्ज़रे-आमपर अगर लायें[3]

१. राजनीतिके, २. खुदा परस्तोंके आन्तरिक एवं नीच कार्य्य; ३. यदि प्रकट कर दिये जायें।

वाकिया है कि शर्मसारीसे
मसजिदोंके चराग़ बुझ जायें

—अदम

मन्दिरों-मसजिदोंके चराग भले ही शर्मसे बुझ जायें, मगर इनके मस्तकपर एक पसीनेकी बूँद भी दिखाई नहीं देगी। जो लाज शर्मतकको बेच सकते हैं, वे देशको बेचने अथवा बरबाद करनेमें क्यों हिचकेंगे ?

सुना, कि किस तरह रंगीन ख़ानक़ाहोंमें[1]
ज़मीरे-ज़ुहोद[2] है लिथड़ा हुआ गुनाहोंसे
सुना, कि कितनी सदाक़तसे मसजिदोंके इमाम
फ़रोख्त करते हैं बेखौफ फतवाहा-ए-हराम
जो बे दरेग़ ख़ुदाको भी बेच देते हैं
ख़ुदा भी क्या है हयाको भी बेच देते हैं
नमाज जिनकी तिजारतका एक हीला है
ख़ुदाका नाम ख़राबातका[3] वसीला है

—अदम

मुसलिमलीगकी साम्प्रदायिक घातक मनोवृत्तिके परिणामस्वरूप भारतका विभाजन होनेके कारण जितनी अधिक संख्यामें हिन्दू मुसलमानोंको अपनी अपनी जन्म भूमियाँ और पूर्वजोंकी क्रीडास्थलियाँ जिस बेबसीमें छोड़नी पड़ीं, उसकी याद भुलाये नहीं भूलती। एक चसक सी, एक टीस-सी सीनेमें बराबर मालूम होती रहती है। भारत विभाजनके तीन वर्ष बाद भी रामकृष्ण मुज़तर यह कहनेपर मजबूर हुए—

---

१ पीरों फकीरोंके निवासस्थानमें, २. पाखण्डी आत्मा, ३. शराब-खानोंके साधन हैं।

उजड़के आये हैं जो वतनसे, उन्हें ज़रा इक नज़र तो देखो।
अभी तक उन अहलेग़मकी आँखोंमें आँसुओंकी नमी मिलेगी॥

इतनी अधिक जन धनकी आहुति लेनेके बाद भी साम्प्रदायिक देवी अभी तृप्त नहीं हुई है। आज भी उसका विकराल मुँह खुला हुआ है। इसीसे खीझकर 'मुल्ला' साहब यह अर्ज़ करने पर मजबूर हुए हैं—

तुझे मज़हब मिटाना ही पड़ेगा रू-ए-हस्तीसे।
तेरे हाथों बहुत तौहीने-आदम होती जाती है॥

इन धर्मके ठेकेदारों और मज़हबी दीवानोंद्वारा इन्सानियतकी ऐसी मिट्टी ख़राब हुई है कि—

क़ुबूल करते न हम अज़लमें किसी तरह यह लिबासे-इन्साँ।
ख़बर जो होता कि पस्त इस दर्जह फ़ितरते-आदमी मिलेगी॥

—आरिफ़ खाँकोटी

इन्सानियत ख़ुद अपनी निगाहोंमें है ज़लील!
इतनी बुलन्दियोंपै तो इन्साँ न था कभी?

—जगन्नाथ आज़ाद

इन्सान, इन्सान नहीं रहा, बक़ौल शम्स कुरैशी—

जिन्हें समझते थे हम मुहज़्ज़िब, वोह वहशियोंसे भी पस्त निकले

यदि मनुष्य, मनुष्य न बना और उसने विवेक-दीपक हाथमें नहीं लिया तो—

चराग़ इन्सानियतके हरसू[1] न जबतक इन्साँ जला सकेंगे।
रहेगा छाया हुआ अँधेरा, फ़िज़ा[3] भी नारीक[4] ही मिलेगी॥

—वारिस उलझादिरी

---

१. मानव-स्वभाव; २. चारों तरफ़, ३. वातावरण, ४. अँधेरी।

स्वराज्य अमृतपान करनेके लिए भारतीय बहुत उत्सुक और अधीर थे। अर्द्धशतीतक निरंतर संघर्ष करनेके बाद स्वराज्य हाथ लगा, परन्तु उसके साथ सम्प्रदायवाद विष भी पल्ले पड़ा। विजयोन्मादमें विवेक बिसारकर हमी विषको प्रथम पान कर लिया गया। बापूके सुफ़ानेपर स्वराज्यामृत भी गलेमें उतार लिया गया, किन्तु अमरत्व प्राप्त न हो सका। विष और अमृत शरीरमें पड़े-पड़े परस्पर विरोधी कार्य कर रहे हैं। एक घुटन सी, एक वेदना-सी, एक टीस-सी, एक चुभन सी, महसूस हो रही है। स्वराज्यके सम्बन्धमें जनताके मनमें बहुत मधुर एवं मोहक आशाएँ थीं—

स्वराज्य-प्राप्ति

चमनसे दौरे-ख़िज़ाँ मिटेगा, बहारको जिन्दगी मिलेगी।
हँसेंगे फूल और खिलेंगी कलियाँ, फ़िज़ाओंको ताज़गी मिलेगी॥

—नसीम भरतपुरी

यह सोचते थे सहर[1] जो होगी, तो इक नई ज़िन्दगी मिलेगी।
सकूने दिलको, जिगरको राहत[2], निगाहको रोशनी मिलेगी॥
चमनकी इक-इक रविशपै हमको, दुल्हनकी-सी दिलकशी मिलेगी।
क़दम-क़दमपै खिलेंगे गुंचे बहारख़ू ताज़गी मिलेगी॥
न होगा फिर बाग़बाँसे शिकवा, न दश्त-गुलचींसे कुछ शिकायत।
समझ रहे थे यह अहले-गुलशन, हँसी मिलेगी, ख़ुशी मिलेगी॥

—मसहूद मुफ़्ती

वतनकी आज़ादियाँ मयस्सर हुईं तो इतना ही हमने जाना।
ख़ुशी-ख़ुशी ज़िन्दगी कटेगी, दिलोंको आसूदगी[4] मिलेगी॥
गिज़ा मिलेगी, मिलेगा कपड़ा, जो चाहेगा दिल वही मिलेगा।
उठा गुलामीका सरसे साया, दिलोंको अब ख़ुर्रमी[5] मिलेगी॥

—महमूद मुज़फ़्फ़रपुरी

१. सुबह, २. चैन, ३. आराम चैन, ४. ख़ुशी, ५. शादानी, तरोताज़गी।

न जाने कितनी साधनाओं, तपस्याओं, बलिदानोंके बाद स्वराज्य-बसन्त आया, परन्तु अपने साथ प्रलयंकारी आँधियाँ भी लेता आया। भारत विभाजन, हत्याकाण्ड, नारी-अपहरण, देश-निष्कासन आदि बलायें उसके साथ इस तरह घुली मिली आई कि बसन्तोत्सव पतझड़में परिवर्तित हो गया—

नई सहर[1] लाई थी सँदेसा कि अब नई जिन्दगी मिलेगी।
किसे ख़बर थी हयात[2] ताज़ा लहूमें लिथड़ी हुई मिलेगी॥
—मज़र सिद्दीक़ी

क़फ़समे छुटनेपै शाद थे हम, कि लज़्ज़ते-ज़िन्दगी मिलेगी।
यह क्या ख़बर थी बहारे-गुलशन लहूमें डूबी हुई मिलेगी॥
—अबुल मजाहिद 'ज़ाहिद'

ज़माना आया है हुर्रियतका[3], चमनमें हरसू[4] यही था चर्चा।
किसीको इसका गुमाँ नहीं था कि दुःखभरी जिन्दगी मिलेगी॥
—महमूद मुज़फ्फरपुरी

जो मुल्कमें इन्क़लाब आया तो, क़त्लो-गारतके साथ आया।
समझ रहे थे समझनेवाले कि इक नई जिन्दगी मिलेगी॥
उदासियोंने उजाड़ डाला कुछ इस तरह बाग आर्ज़ूका।
न ताज़ा दम इसमें गुल मिलेगा, न मुसकराती कली मिलेगी॥
—सरीर काबरी गयावी

हुई न थी जब नमीब कुरबत सुहाने कितने थे ख्वाबे-उल्फ़त।
कि हुस्नको हर अदामें रक़्साँ[5] नई-नई जिन्दगी मिलेगी।
—क़मर नअमानी

१. सुबह; २. नवजीवन; ३. आज़ादीका, ४. सर्वत्र, ५. नृत्य करती हुई।

किया था आज़ादि-ए-वतनका बड़ी मसर्रतमें ख़ैर मक़दम।
किसे था इसका यक़ीं कि अंजामेकार गारतगरी मिलेगी ॥
—नैय्यर

न था यह वहमो-गुमाँ भी 'साग़र' बहार आयेगी जब चमनमें।
तो पत्ता-पत्ता तड़प उठेगा, कली-कली शबनमी[1] मिलेगी ॥
—साग़र अंसारी

बड़ी उम्मीदें, बहुत थे अरमाँ कि होंगे सैरे-चमनमें शादाँ।
बहार आई तो क्या ख़बर थी कि हमको आशुफ़्तगी[2] मिलेगी ॥
—मज़्नूँ कोटवी

वह दौर आया है जिसका इनसाँ, कभी तसव्वुर[3] न कर सका था।
किसे ख़बर थी कि एक दिन यूँ, बलामें दुनिया घिरी मिलेगी ॥
—नुसरत करलोवी

ग़रीब साहिलसे[4] कोई पूछे जो हाल दरियाने कर दिया है।
करोगे मौजोंका जब नज़ारा मिज़ाजमें बरहमी मिलेगी ॥
—मुनव्वर लखनवी

स्वराज्य प्राप्तिसे पूर्व जनसाधारणका विश्वास था कि जीवनोपयोगी सभी आवश्यकीय वस्तु सुलभ और सस्ती हो जायेंगी। युद्धजनित अस्थायी मँहगाई विलीन हो जायगी।

कांग्रेसकी ओरसे जब नमक-जैसी सस्ती वस्तुपरसे टैक्स उठानेका आन्दोलन चलाया गया था, तब लोगोंकी आम धारणा बन गई थी कि टैक्सोंका अभिशाप समाप्त कर दिया जायगा। यह किसीको आभासतक

---

१. अश्रुपूर्ण, २. परेशानी, ३. कल्पना, ४. किनारेसे।

न हुआ कि नमकके अतिरिक्त सभी वस्तुओंपर कई-कई टैक्स लाद दिये जायँगे। इन्कमटैक्स, मृत्युटैक्स, सेल्सटैक्स, एक्साइज़ ड्यूटी आदि भिन्न-भिन्न टैक्स नित्य नये बढ़ते जायँगे। रेलवे और पोस्टआफिसके किराये घटनेके बजाय बढ़ते चले जायँगे।

ज़माना वाक़िफ़ न था कुछ इससे कि ऐसा क़हते-गरा[1] पड़ेगा।
जो चीज़ मिलती थी चार पैसोंको अशर्फ़ी पर वही मिलेगी॥
यह क्या ख़बर थी कि फ़ाक़ा मस्तीमें सत्रपोशी[2] भी होगी मुश्किल।
अमाकी[3] जब होंगी इल्तजायें[4] तो क़त्लो-ग़ारत गरी मिलेगी॥
—सरीर क़ाबरी गयावी

बहारमें जानते थे साक़ी! न बाबे-मैख़ाना[5] बन्द होगा।
यह क्या ख़बर थी कि मैकशोंको शराब तिश्ना लबी[6] मिलेगी॥
—ज़ाकिर फ़तहपुरी

वही है फ़ाक़ोंकी जब्रमामानियोंसे इफ़रादकी हलाकत।
मेरा गुमाँ था ग़लत कि आज़ाद होके आसूदगी मिलेगी॥
—ख़लीक़ ईबोलवी

जनताके जब स्वराज्य सम्बन्धी स्वप्न भंग हुए तो वह उन नेताओंसे चिढ़ गई, जो लम्बे लम्बे वायदे करते हुए और जनताके जज़्बातको उभारते हुए थकते ही न थे।

कहाँ है अब वोह जो कह रहे थे कि "दौरे-आज़ादमें वतनको—
नये नजूमो-क़मर[7] मिलेंगे, नई-नई ज़िन्दगी मिलेगी॥"
—आरिफ़ बाँकेटी

---

१. भीषण अकाल; २. वस्त्राभावमें गुप्तांगोंका ढकना भी कठिन होगा; ३. सुख शान्तिके लिए; ४. प्रार्थनाकी जायँगी तो; ५. मधुशालाका द्वार; ६. प्यास बढ़ानेवाली, ७. नवीन नक्षत्र-चन्द्रमा।

स्वराज्यसे पूर्व लोगोंका विश्वास था कि परस्पर भेद-भाव नहीं रहेगा। हर भारतवासीको समान अधिकार होगा—

जो राज़[1] आज़ादिए-वतनमें निहाँ[2] था कौन उसको जानता था।
कि इक तरफ ख्वाजगी[3] मिलेगी तो इक तरफ बन्दगी[4] मिलेगी॥
यही है जमहूरियतके[5] मानी तो फिर ग़ुलामीका क्या गिला है।
किसीको ग़म होगा और किसीको मसर्रते-दायमी[6] मिलेगी॥

—सरीर काबरी

शगुफ्ता बर्गहाय गुल्की[7] तहमें नोके-खार है।
खिज़ाँ[8] कहेंगे फिर किसे अगर यही बहार है॥

—जोश मलीहाबादी

वही बाक़ी है अब तक बन्दिशोंकी सिलसिलाबन्दी।
क़दमबन्दी, ज़बाँबन्दी, नज़रबन्दी, सदाबन्दी॥
यह हुर्रियत[10] कहाँ है, हुर्रियतकी है हवाबन्दी।
गुलामी हो गई रुखसत, मगर बाक़ी है पाबन्दी॥
गलेसे तौक़ उतारा पाँवमें ज़ंजीर पहना दी।
तो फिर मैं पूछता हूँ, क्या यही है दौरे-आज़ादी॥

—सीमाब अकबराबादी

फिज़ायें[11] सोच रही हैं कि इब्ने-आदमने[12]।
खिरद[13] गवाँके, जुनूँ आज़माके क्या पाया?
वही शिकस्ते-तमन्ना वही ग़मे-ऐय्याम।
निगारे-ज़ीस्तने[14] सब कुछ लुटाके क्या पाया॥

—साहिर लुधियानवी

१. भेद, २. निहित; ३. किन्हींको हुकूमत; ४. किन्हींको गुलामी; ५. प्रजातन्त्रतासे, ६. [illegible] ७. [illegible] हुए फूलोंकी तहोंमें; ८. काँटे छिपे हुए [illegible] [illegible], ११. हवायें; १२. मानवपुत्रने, १[illegible]

सहरका[1] मुजदा[2] सुनानेवाले ! तुलूअ[3] बेशक सहर[4] हुई है।
मगर वोह किस कामकी सहर जो चुरा ले कुटियाओंका उजेला ॥

—कैफ़ी

ख़्वाब ज़ख़्मी है उमंगोंके कलेजे छलनी
मेरे दामनमें हैं ज़ख़्मोंके दहकते हुए फूल
अपनी सदसाला तमन्नाओंका हासल है यही?
तुमने फ़िरदौसके[5] बदलेमें जहन्नुम[6] लेकर
कह दिया हमसे "गुलिस्ताँमें बहार आई है"
किसके माथेसे गुलामीकी सियाही छूटी?
मेरे सीनेमें अभी दर्द है महकूमीका[7]
मादरे-हिन्दके चेहरेपै उदासी है वही

—सरदार जाफ़िरी

वही क़ल्मपुरसी, वही बेहिसी आज भी क्यों है तारी।
मुझे ऐसा महसूस होता है यह मेरी महनतका हासिल नहीं है ॥

—अख़्तरउलईमान

जमहूरियतका[8] नाम है जमहूरियत कहाँ?
फ़ताइते-हक़ीक़ते[9]-उरियाँ[10] है आजकल ॥
काँटे किसीके हक़में किसीको गुलो-समर।
क्या ख़ूब एहतमामे-गुलिस्ताँ[11] है आजकल ॥

—जिगर मुरादाबादी

सूरज चमका आज़ादीका लेकिन तारीकी[12] कम न हुई।
पुर हौल अँधेरे गुरबतके कुछ और भी बढ़ते जाते हैं ॥

—मज़हर सिद्दीक़ी

१. प्रातःकाल होनेका; २. शुभ सन्देश; ३. उदय; ४. सूर्य, सुबह; ५. स्वर्गके; ६. नरक; ७. गुलामीका, पराधीनताका; ८. प्रजातन्त्रका ९. वास्तविकता, १०. नग्न, ११. चमनका प्रबन्ध, १२. अँधेरी।

न जाने हमनशीं[1] ! यह बदशगूनी रंग क्या लाये ?
कि गुलशनमें बहार आते ही शबनम[2] अश्क[3] बरसाये ॥
मुबारक सुबह हो लेकिन, चमनवालो ! यह ख़दशा[4] है ।
कि सूरजकी तमाज़तसे[5] कहीं गुलशन न जल जाये ॥

—नाज़िश परतापगढ़ी

स्वतन्त्रता रूपी दुलहन वरण करनेसे पूर्व काश उसे देख लिया होता—

यह इज़्तराब[6] ! यह शौक़े-उरूसे-आज़ादी[7] !!
उठाके देख तो लेना था परद-ए-महमिल[8]॥

—हफ़ीज़ होश्यारपुरी

काश स्वतन्त्रता दुलहनका अन्तरंग भी इतना ही मोहक होता, जितना कि उसका बाह्य आवरण था—

काश ऐ महमिलनशीं ! खुलता न यूँ तेरा भरम ।
हाय कितनी दिलनशीं थी परद-ए-महमिलकी बात ॥

—नाज़िश परतापगढ़ी

स्वतन्त्रता मिलनेके बाद जो सर्वत्र एक असतोष सा एक दमघोंट धुआँ सा फैला हुआ है, उसके कई कारण हैं—

१—बहुत से ऐसे व्यक्ति जो स्वतन्त्रता-संग्राममें बरबाद हो गये, स्वतन्त्रता मिलनेपर भी उनकी वही शोचनीय स्थिति रही। किसीने उनके आँसू तक नहीं पूँछे। इन आँसुओंको ये शायद चुपचाप पी भी जाते, यदि उनके साथी उनके दुःख शोकमें समवेदना प्रकट कर सकते, किन्तु

१ पड़ोसी, २ ओस, ३. आँसू; ४. भय, सन्देह, खटका; ५. प्रचण्ड धूपसे, ६. उत्सुकता, ७. स्वतन्त्रतारूपी दुलहनके वरण करनेका चाव; ८. महमिलका परदा।

वे साथी इतने ऊँचे और महान् हो गये कि उन्हें इनके आँसुओंको पूँछनेका अवकाश ही नहीं मिला। उद्घाटन-समारोहों, भोजों, जुलूसों, व्याख्यान-सभाओं और अपने पदको सुरक्षित बनाये रखनेके प्रयत्नों आदिमें वे बेचारे इतने लीन और व्यस्त हो गये कि उन्हें यह खयाल तक न रहा कि स्वतन्त्रताकी खिलअत पहने हुए, जिन लाशोंपरसे हमारा जुलूस गुजरा है, उनके परिवारोंकी सिसकियाँ थामना भी हमारा फर्ज है। वही सिसकियाँ आज सर्वत्र सुनाई दे रही हैं। काश उन्हें इतना आभास हुआ होता—

उठ भी सकती हैं दफ़अतन लाशें।
जिनपै मसनद बिछाये बैठे हैं॥

—कैफ़ी आज़मी

२—बहुत से ऐसे व्यक्ति, जिनकी पसीनेकी एक भी बूँद स्वराज्यके लिए नहीं गिरी; अपितु स्वराज्य आन्दोलनको कुचलनेमें कोई प्रयत्न शेष नहीं छोड़ा। वे मालामाल हो गये, ऊँचे-ऊँचे पदोंपर प्रतिष्ठित बने रहे और बहुत से ऐसे व्यक्ति जो स्वतन्त्रतादेवीका प्रसाद पानेके सर्वथा अधिकारी थे, मुँह देखते रह गये। इन मुँह देखनेवालोंके हृदयोंमें भी कुछ इस तरहके उच्छ्वास निकलते रहते हैं—

क्या गुलिस्ताँ[1] है कि गुंचे तो हैं लबे-तिश्न-ओ-ज़र्द[2]।
ख़ार आसूद-ओ-शादाब[3] नज़र आते हैं॥

—जाँ निसार 'अख़्तर'

ऐसे ही उपेक्षितोंके हृदयोंमें ऐसे उद्गार भी प्रकट होते रहते हैं—

हरम हमींमें, हमींसे है, आज बुतख़ाने।
यह और बात है दुनिया हमें न पहचाने॥

—अज़ीज़ वारिसी

१. चमनकी व्यवस्था तो देखो; २. कलियाँ तो प्यासी और मुरझाई हुई हैं; ३. और काँटे प्रफुल्ल।

जो स्वार्थी जनताको दोनों हाथोंसे लूट रहे हैं, उन्हें देशके उजड़नेका क्या ग़म ?

ख़बर हो कारवाँको[1] मंज़िले-मक़सूदकी[2] क्योंकर ।
बजाये रहनुमाई[3] रहज़नी है[4] आम ऐ साक़ी !

—अदीब मालीगाँवी

३—स्वराज्यसे पूर्व जो सुख-स्वप्न देखा जा रहा था, वह स्वराज्य मिलनेपर भंग हो गया। वही मँहगाई, वही पुलिस राज्य। देशकी स्थिति सँभलनेके बजाय उत्तरोत्तर बिगड़ती गई। रिश्वतखोरी, चोर-बाज़ारी, सिफ़ारिशोंकी लानत, लूटमार, डाकेज़नी, अपहरण, अव्यवस्था आदिकी बाढ़ सी आगई—

फ़िज़ा चमनकी कुछ ऐसी बदली, गुलो-समनका पता नहीं है।
जो दुश्मने-रहज़नी थे पहले, ख़ुद उनमें अब रहज़नी मिलेगी ॥
नई है मै और नये हैं सागर, नई है बज़्म और नया है साक़ी।
मगर जो पहले थी मै-कशोंमें वोह आज भी तिश्नगी मिलेगी ॥

—नसीम भरतपुरी

ग़रीब जनताको स्वराज्यमें क्या मिला—

मगर इन दरख़्तोंके सायेमें ऐ दिल !
हज़ारों बरसके यह ठिठुरे-से पौदे।
यह हैं आज भी मर्द, बेजान, बेदम।
यह हैं आज भी, अपने सरको झुकाये ॥

—जज़्बी

१. यात्रीदलको, २. लक्ष्य पर पहुँचनेकी, ३. पथप्रदर्शकोंके बजाय; ४. यात्रियोंको लूटा जा रहा है।

कौन कहता है कि स्वतंत्रतारूपी बहार नहीं आई ? आई और जरूर आई। हाँ, यह बात दूसरी है कि वह जन-साधारणकी कुटियाओंमें नहीं आई—

बहार आई, ज़रूर आई, पर अपनी बस्तीमे दूर आई।
वहाँ उगाये ज़मींने सब्ज़े, जहाँ कोई दीदावर नहीं है॥

—शफ़ीक़ जौनपुरी

कुछ इस तरहसे बहार आई है कि बुझने लगे।
हवा-ए-लाला-ओ-गुलसे चरागे-दीद-ए-दिल॥
रवाँ है क़ाफ़िला, बेदरा-ओ-बेमक़सूद।
जो दिल गिरफ्ता हैं राही, तो रहनुमाँ ग़ाफ़िल॥

—हफ़ीज़ होशयारपुरी

४—भारत-विभाजनके कारण जिन्हें अपने बसे-बसाये घर छोड़ने पड़े और स्वराज्यके बाद भी जिन्हें इधर-उधर भटकना पड़ा, उनकी हाय भी आकाशमें गूँज रही है—

वह फ़क़त आँसू नहीं, ऐ चश्मे-ज़ाहिर-बीन[1] दोस्त!
अपनी पलकोंपे लिये बैठे हैं इक अफ़साना हम॥

—जगन्नाथ आज़ाद

५—वे मुस्लिम लीगी जो दिनमें सैकड़ों बार हाथ उठा उठाकर पाकिस्तान बननेकी दुआएँ माँगते थे। किसी भी वजहसे वे पाकिस्तान न जा सके और भारतमें रहनेपर गैर मुसलमानोंकी बहुसंख्याके कारण, पहिले जितनी अधिक न तो सरकारी नौकरियाँ हथिया पा रहे हैं और न मनमाने फ़ित्ने ही उठा पा रहे हैं। यद्यपि वे अब भी भारतमें रहते हुए 'भारत मुर्दाबाद' और 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते रहते हैं, और

—

१. पारखी, देखनेवाला।

पचमॉगी कार्य कर रहे हैं। फिर भी उनके मनमें पडोसी जातियोंको देख-देखकर जो ईर्ष्याकी भावना उठती रहती है। वह उनके लेखों, नज्मों, गजलों आदिसे ध्वनित होती रहती हैं। यह लोग अपने देशमें रहते हुए भी अपनेको बेगाना समझते हैं।

६—वे साम्यवादी जो भारतीय होते हुए भी रूसको अपना माता-पिता समझते हैं। भारतीय प्रजातन्त्रके विरुद्ध गद्य-पद्य-द्वारा असन्तोष फैलाते रहते हैं। यहाँ तक कि १६४७ के प्रथम स्वतन्त्रताके उत्सवको देखकर वे यह कहनेका भी साहस कर बैठे—

> यह जश्न[1], जश्ने-मसर्रत[2] नहीं, तमाशा है।
> नये लिबासमें निकला है रहज़नीका[3] जुलूस॥
>
> —साहिर लुधियानवी

सुरों असुरोंने एक बार समुद्र मन्थन किया तो अमृतके साथ विष भी निकला। उस विषको अकेले महादेवने पी लिया और अमृत औरोंके लिए छोड दिया। अर्द्धशतीतक निरंतर संघर्ष करनेके बाद भारतको भी स्वराज्यामृत और सम्प्रदायवाद-गरल प्राप्त हुए। भारत-वासियोंकी अनेक जन्म-जन्मान्तरोंकी तपश्चर्याके फलस्वरूप उनका महामानव (गान्धी) भी गरल पीनेको आगे बढा। वह उन्हें विजयोत्सव मनाने और स्वच्छन्दतापूर्वक स्वराज्य सेवन करनेको छोडकर एकान्तमें बैठकर गरल पान कर रहा था कि उसका यह गरल पान भी न देखा गया। अमृतको छोडकर उस गरलपर पिल पड़े। जब गरल आसानीसे नहीं छीना जा सका तो वरदान पाये हुए राक्षसके समान हमने स्वयं अपने वर-दाता महामानवको मार डाला। विश्वकी इस दीप-ज्योतिके बुझनेसे बकौल अर्श मलसियानी—

राष्ट्र पिताकी शहादत

---

१. उत्सव; २. खुशीका उत्सव नहीं; ३. लुटेरेपनका।

यह किसके ख़ूनके धब्बे हैं आदमीयतपर ?
मुक़ामे-ऐफ़[1] है ऐ हिन्द ! तेरी क़िस्मतपर ॥

....

है गुमरहीको[2] ख़ुशी यह कि रहनुमा[3] न रहा ।
भँवरमें आई जो किश्ती तो नाख़ुदा[4] न रहा ॥

....

लिया ख़िराज[5] अक़ीदतका[6] जिसने दुश्मनसे ।
मिलादी वक़्तकी रफ़्तार दिलकी धड़कनसे ॥

....

झुकादी गरदनें मग़रूर कजकुलाहोंकी[7] ।
झपक रही थी पलक जिससे बादशाहोंकी ॥

....

ग़रज़ कि आँखपै परदा जो था उठाके गया ।
दिलोंकी ईंटसे मन्दिर नया बनाके गया ॥

....

जो डूब जाता है सूरज तो रात होती है ।
ख़ता मुआफ़ हो शबनम[8] इसी पै रोती है ॥

....

यह क्या कि जेठमें जब प्यास तेज़ हो लबकी ।
तो सूख जाय उसी वक़्त जल भरी नद्दी ॥

....

चढ़े जो चाँद कभी लेके चाँदनी अपनी ।
तो उसकी फ़िक्रमें मँडलाये हर तरफ़ बदली ॥

—जमील मज़हरी एम० ए०

---

१. शर्मकी बात है, २. पथभ्रष्टताको, ३. पथप्रदर्शक; ४. नौका-खिवैया; ५. कर, टैक्स; ६. श्रद्धा विश्वासका, ७. अभिमानसे ऊँचा मस्तक रखनेवालोंकी; ८. ओस ।

यह मौत न थी क़ुदरतने तेरे, सर पर रक्खा इक ताजे-हयात[1]।
थी ज़ीस्त[2] तेरी मैराजे-वफ़ा[3], और मौत तेरी मैराजे-हयात[4]॥

... .

मख़लूक़े-ख़ुदाकी[5] बनके सिपर मैदाँमें दिलावर एक तू ही।
ईमाँके पयम्बर आये बहुत, इन्साँका पयम्बर एक तू ही॥

... .

तू चुप है लेकिन सदियोंतक गूँजेगी सदाये-साज़ तेरी।
दुनियाको अँधेरी रातोंमें ढारस देगी आवाज़ तेरी॥

—आनन्दनारायण मुल्ला

महात्मा गाँधी—

ला ज़वाल एक टीस है सीनोंमें ग़म है मुस्तक़िल।
भीगती आती हैं आँखें, डूबते जाते हैं दिल॥
जगमगाते देशकी बरबाद शोभा हो गई।
नागहाँ कोई सुहागिन जैसे बेवा हो गई॥
ज़िन्दगी देकर वतनको सबका प्यारा उठ गया।
बेकसोंका, नेक लोगोंका, सहारा उठ गया।
हाय यह क्या हो रहा है? हाय यह क्या हो गया।
हिन्दका बापू ज़मानेको जगाकर सो गया?
सब्र भी आ जायगा, यह ज़ख्म भी भर जायगा।
हिन्द ऐसा देवता लेकिन कहाँसे लायगा॥
ख़्वाब तकमें भी ख़याल इस बातका आता न था।
शान्तीका देवता गोलीसे मारा जायगा॥

१. अमर जीवनका ताज; २. ज़िन्दगी, ३. नेकीका लक्ष्य; ४. जीवनका लक्ष्य, ५. ईश्वरकी सृष्टिकी।

यह मौत न थी क़ुदरतने तेरे, सर पर रक्खा इक ताजे-हयात[1]।
थी ज़ीस्त[2] तेरी मैराजे-वफ़ा[3], और मौत तेरी मैराजे-हयात[4]॥

. . . .

मख़्लूक़े-ख़ुदाकी[5] बनके सिपर मैदाँमें दिलावर एक तू ही।
ईमाँके पयम्बर आये बहुत, इन्साँका पयम्बर एक तू ही॥

. . . .

तू चुप है लेकिन सदियोंतक गूँजेगी सदाये-साज़ तेरी।
दुनियाको अँधेरी रातोंमें ढारस देगी आवाज़ तेरी॥

—आनन्दनारायण मुल्ला

महात्मा गाँधी—

ला ज़वाल एक टीस है सीनेमें ग़म है मुस्तक़िल।
भीगती जाती हैं आँखें, डूबते जाते हैं दिल॥
जगमगाते देशकी बरबाद शोभा हो गई।
नागहाँ कोई सुहागिन जैसे बेवा हो गई॥
ज़िन्दगी देकर वतनको सबका प्यारा उठ गया।
बेकसोंका, नेक लोगोंका, सहारा उठ गया।
हाय यह क्या हो रहा है? हाय यह क्या हो गया।
हिन्दका बापू ज़मानेको जगाकर सो गया?
सब्र भी आ जायगा, यह ज़ख़्म भी भर जायगा।
हिन्द ऐसा देवता लेकिन कहाँसे लायगा॥
ख़्वाब तकमें भी ख़याल इस बातका आता न था।
शान्तीका देवता गोलीसे मारा जायगा॥

१. अमर जीवनका ताज; २. ज़िन्दगी; ३. नेकीका ताज; ४. जीवनका ताज; ५. ईश्वरकी सृष्टि।

संगरेज़ोंके[1] जिगरका आख़िरी क़तरा लुटा।
आँसुओंके सैल्से[2] इक दूसरी गंगा बहा॥

....

ऐ ज़मीं! ऐ आसमाँ! ऐ चाँद तारो, आफ़ताब!
डाल लो आज अपने रुख़पर मातमी काली नक़ाब॥
आँसुओंमें ढाल दो अपनी ज़ियाओंका शबाब!
ख़ूब रोलो भरके जी, है आज रोना ही सवाब॥
नौ-उरूसे-क़ौमियतका[3] लुट गया ताज़ा सुहाग।
आज तौक़ीरे-वतनको[4] खागई ख़ूँख़्वार आग॥

....

जिसकी पेशानीके बलसे सरनगूँ[5] शाही कुलाह[6]।
जिसकी पाये-अज़्मपर[7] पाबोस[8] था ईवाने-माह[9]॥
जिसकी अगुश्ते-इशारे से थे अफ़रंगी तबाह।
जिसके दामनमें सियासत-साज़[10] लेते थे पनाह॥
ऐ अजल[11]! उस शै को छूनेसे तू घबराई नहीं।
ऐसे इन्साके क़रीब आते भी शरमाई नहीं?

—अहमद अज़ीमाबादी

पैकरे-तहज़ीबे-इन्साँ—

१७ शेरमें से ४ शेर

वोह गान्धी जिसका सारे मुल्ककी गरदनपै एहसाँ था।
वोह गान्धी, कारनामा जिसका आलममें नुमाया[12] था॥

१. पत्थर हृदयका, २. बहावसे; ३. नवीन राष्ट्ररूपी दुल्हनका; ४. देशकी प्रतिष्ठाको, ५. नत, ६. शाहीताज, ७. दृढ़ चरणोंपर; ८. चूमता; ९. चन्द्रमा महल; १०. राजनीतिज्ञ; ११. मृत्यु; १२. प्रकट।

मीठे शब्दोंमें दिल लुभाता ही रहा।
हँस-हँसके बुराइयाँ जलाता ही रहा॥
इस खन्दाजबीनीकी[1] कोई हद भी है।
गोली खाकर भी मुसकराता ही रहा॥

इक ग़मने तेरे भुलवा दिये ग़म सारे।
हम भूल गये गुज़िश्ता[2] मातम सारे॥
यह कत्लकी तेरे गूँज अल्लाह-अल्लाह।
झुकवा दिये इस जहाके परचम[3] सारे॥

पत्थर भी है इन्सानका दिल काँच भी है।
हाँ पापकी और पुनकी यहाँ जाँच भी है॥
सुनते थे कि दुनियामें नहीं साँचको आँच।
देखा यह मगर कि साँचको आँच भी है॥

—एजाज़ सिद्दीक़ी

तक़सीम—

ग़ारते-आमादा थी हर क़ौम और बे तज्ञीम थी,
ख़ुदपरस्ती, ख़ुदसराने वक़्तकी तसलीम थी,
मुल्कका बटवारा हो, या इख़्तलाफ़ अक़वामका,
क़िस्मते-हिन्दोस्ताँ, तक़सीम ही तक़सीम थी,
मर्दे-दरवेश एक उट्ठा हाथमें लेकर असा,
ख़त्म करनेके लिए, यह सिलसिला तक़सीमका
गूँज उठी अक़वाममें उसकी सलाये-इत्तहाद
हिल गये फ़ित्नोंके सीने, काँप उठी रूहे-फ़िसाद

१. हँसमुख स्वभावकी; २. भूतकालीन, ३. झण्डे।

जुर्म यह था क़ौमको गुमराह क्यों कहता है, यह
मनचलोंको मुल्कका बदख्वाह क्यों कहता है, यह,
क्यों सुना करता है, यह क़ुरआन इंजील और ग्रंथ
राम और भगवान्को अल्लाह क्यों कहता है यह,
था दमाग उसका हिमाला, बरहना सर उसका ताज
उसका दिल हरद्वार था, जिसमें था हरदम रामराज,
एक आँख उसकी थी जमना और गंगा दूसरी
और इन दोनोंका संगम उसकी क़ौमी ज़िन्दगी
एक हाथ उसका शिवालागीर, इक मस्जिद पनाह
थी नज़र गीतापर उसकी और क़ुरआँ पर निगाह

पाँव थे राहे-तलबके दो सलोने उस्तवार
कृष्णका सच्चा मुक़ल्लद और बुधकी यादगार
वोह जवाँ अज़्मोजवाँ करदार मर्दे-पीर था
था न हिन्दुस्ताँ तो हिन्दुस्तानकी तसवीर था

—सीमाब अकबराबादी

प्रेरणात्मक शाइरी

भारत विभाजन, साम्प्रदायिक हत्याकाण्ड, और स्वतन्त्रताके मधुर स्वप्न भग होनेके कारण सर्वत्र निराशा, निरुत्साह, असफलता, अकर्मण्यताकी घटायें छा गईं, किन्तु हमारे नौजवान शाइरोंने एक पलको भी हिम्मत नहीं हारी। अपने प्रखर कलाम-द्वारा उन घटनाओंको अहर्निश छिन्न-भिन्न करनेमें लगे हुए हैं। वे आज इतने साहसी, पुरुषार्थी और स्वावलम्बी हो गये हैं कि उन्नति-मार्गमें बढ़नेके लिए खुदाके सहारेकी भी आवश्यकता नहीं समझते—

चमक ही जायगी तक़दीरे-कायनात इक रोज़।
न हो खुदाकी मदद, आदमीकी ज़ात तो है॥
जो काँप-काँप-सी उठती है तीरह-तारह फ़िज़ा।
पयामे-सुबह लिये ज़िन्दगीकी रात तो है॥

—अज्ञात

बढ़ो कि रंगे-चमन बदल दें, चलो-चलो हिम्मत आज़मायें।
जुनूँकी लौ और तेज़ कर दो, फ़सुर्दा शमओंको फिर जलायें॥

—अज्ञात

अपने देशको छोड़कर जानेवाले मुहाजरीनको 'नज़ीर' बनारसी मना करते हुए कहते हैं—

वतनको तू छोड़ दे मगर क्या, ग़मे-वतन तुझको छोड़ देगा।
यहाँ तड़पती है आज लाशें, वहाँपै फ़क़त ज़िन्दगी मिलेगी॥
तेरी ग़रीबीका क्या मुदावा कि तू है रहमानका सताया।
रहा अगर तेरा ज़हने मुफ़लिस, तो हर जगह मुफ़लिसी मिलेगी॥

दुःखमें भी सुख छिपा रहता है—

गिरेगी जब आसमाँसे बिजली तो जब उठेगा चमनसे शीवन।
फुंकेगा जब सीनेका गुलिस्ताँ, तो दौरे-ज़िन्दगी मिलेगी।

—प्रेम मलीहाबादी

इन्हीं बगूलोंकी गोदमें पल रही है 'साहिल' सफ़ीने भी।
इन्हीं उभरते थपेड़ोंमें इक रोज़ मग परछाइयोंको मिलेगी॥

—साहिर होशियारपुरी

आपदाओंसे घबराना इन्सानकी शानके खिलाफ है। मगर आजके इन्सानको न जाने यह क्या हो गया है—

जरा-सी खातिर शिकस्तगीकी, नहीं है बर्दाश्त आदमीको।
कलीको वक़्ते-शिकस्त देखो तो मुसकराती हुई मिलेगी॥
—सीमाब अकबराबादी

क़दम तो रख मंज़िले-वफ़ामें बिसात खोई हुई मिलेगी।
वहीं-कहीं नक़्शे-पाकी सूरत[1] पड़ी हुई जिन्दगी मिलेगी॥
है जौरे-सैयाद ही का सदका चमनकी हंगामा आफ़रीनी।
तबाहियाँ जिस जगहपै होंगी वहीं-कहीं ज़िन्दगी मिलेगी॥
—सिराज लखनवी

बदीको परखो मिलेगी नेकी, जो ग़मको समझो ख़ुशी मिलेगी।
जहाँ-जहाँ है घना अँधेरा, वहीं-वहीं रोशनी मिलेगी॥
यह ना उमेदी यह बेयक़ीनी, यक़ीनो-उम्मीदकी झलक है।
इन्हीं अँधेरोंको पार करके यक़ीनकी रोशनी मिलेगी॥
—साग़र निज़ामी

क़दम बढ़ाओ ख़िज़ा नसीबो! वोह मंज़िलें मुन्तज़िर हैं अपनी।
जहाँ पहुँचकर निगाहो-दिलको, बहारकी ताज़गी मिलेगी॥
—नरेशकुमार 'शाद'

शिकस्ता दिल हो न मेरे माली! वोह दिन भी नज़दीक आ रहा है।
कि फूल खिलते हुए मिलेंगे, फ़िज़ा महकती हुई मिलेगी॥
—शफ़ीक़ जौनपुरी

---

१. चरण चिह्नोंकी तरह।

जो क़ैदो-बन्दे चमनसे घबराके आशियानेको छोड़ देगा ।
करेगा जिस शाख़पर बसेरा, वही लचकती हुई मिलेगी ॥
पुराने तिनकोंमें आँधियोंके मुक़ाबिलेकी सकत नहीं है ।
उजड़ भी जाने दे आशियाना कि फिर नई ज़िन्दगी मिलेगी ॥

—निसार इटावी

कभी तो इस ज़िन्दगी-ए-मुर्दापै रंग आयेगा ज़िन्दगीका ।
कभी तो बदलेंगे दिल हमारे, कभी तो हमको ख़ुशी मिलेगी ॥

—अर्श मलसियानी

अँधेरी रातोंमें रोनेवालोंसे कह रही है शफ़क़की सुर्ख़ी[1] ।
न अब बहाओ कोई भी आँसू, तुम्हें नई रोशनी मिलेगी ॥

—जमनादास 'अख़्तर'

हज़ार ज़ुल्मत हो, कारवाने-सहरकी[2] आमद न रुक सकेगी ।
इन्हीं अँधेरोंमें बदमेरोतीको[3] एक दिन रोशनी मिलेगी ॥

—गोपाल मित्तल

हज़ार नाकामियाँ हों 'नश्तर' हज़ार गुमराहियाँ हों लेकिन—
नशाने-मंज़िल अगर है दिलमें तो एक दिन लाज़िमी मिलेगी ॥

—हरगोविन्ददयाल 'नश्तर'

अभी तो मसरूफ़े गिरया हो लेकिन, वोह दिन भी आयेगा इक न इक दिन ।
जफ़ाकी आँखोंमें होंगे आँसू, वफ़ाके लबपर हँसी मिलेगी ॥

—अकरम धौलपुरी

नवयुवकोंकी प्रेरणात्मक शाइरीका उल्लेख कहाँ तक किया जाय, अहर्निश इसीमें जीवन खपा रहे हैं और इसमें आश्चर्यकी कोई बात भी नहीं है। यह उम्र ही ऐसी है कि वे पिये नशा बना रहता है और असम्भव कार्य भी सम्भव कर डालती है, परन्तु जब हम 'असर' लखनवी जैसे ७० वर्षीय वयोवृद्धकी यह ललकार सुनते हैं तो मन आशासे सचमुच ओत प्रोत हो जाता है—

> माना नसीब सो गये बेदार तुम तो हो।
> सोते हुए नसीब जगाते चले-चलो॥
> काँटोंको रौन्दते हुए शोलोंसे खेलते।
> हर-हर क़दमपै धूम मचाते चले-चलो॥
> बुझते हुए चराग़ भी हैं कामके 'असर'!
> शमएँ नई उन्हींसे जलाते चले-चलो॥

इस दौरके शाइरोंने प्रायः सभी आवश्यकीय एवं सामयिक विषयोंको नज़्म किया है। विश्वमें घटनेवाली मुख्य मुख्य घटनाओंसे और विश्व-साहित्यसे उर्दू-शाइर असर क़ुबूल करते रहे हैं। वे कूपमण्डूक न रहकर विस्तृत क्षेत्रमें उड़ान भरने लगे हैं। यही कारण है कि उर्दू-शाइरी उत्तरोत्तर सम्पन्न होती जा रही है।

इस तरहकी इन्क़लाबी, प्रगतिशील और नवीन शाइरीका विस्तृत विवेचन, क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत पुस्तक 'शाइरीके नये मोड़'में कई भागोंमें समाप्त होगा। इस परिच्छेदमें प्रसंगानुसार संकेत मात्र हुआ है।

१४ मार्च १९५८ ई०]

●

१ यह अंश शेरो-सुख़नके चौथे भागके प्रथम सम्करणमें छपा था। द्वितीय संस्करणमें यहाँसे निकाल कर अब प्रस्तुत पुस्तकमें पुनः संशोधित परिवर्द्धित करके दिया जा रहा है।

नवीन धारा
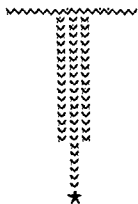
नई लहरमें जिन घटनाओंका संक्षिप्त उल्लेख हुआ है
उनकी कुछ झाँकी इन शीर्षकोंमें मिलेगी—

१ नरमेध-यज्ञ

२ जनता-राज

३ देश-प्रेम

४ नवीन चेतना

प्रो० 'शोर' अलीग—

दुनिया

[साम्प्रदायिक हत्याकाण्डकी भविष्यवाणी]

ख़ून इतना बहायगी दुनिया
ख़ूनमें डूब जायगी दुनिया
गुदड़ियोंमें सुलग रही है जो आग
मसनदोंमें लगायेगी दुनिया
गुस्ले-सेहतके वास्ते इकबार
फिर लहूमें नहायेगी दुनिया
जिनकी लौसे चमन धुआँ देंगे
फूल ऐसे खिलायेगी दुनिया
साज़े-सहज़ीबे-नौके-तारों पर
ख़ूँ चुका गीत गायेगी दुनिया
जिनको तरसी है किश्तियाँ सदियों
अब वोह तूफ़ाँ उठायेगी दुनिया
इक तरफ़ रोयेगी लहू फ़ितरत
इक तरफ़ मुसकरायगी दुनिया
ताज़े-कैसर असाये-सुल्तानी
ठोकरोंमें उड़ायेगी दुनिया
रोते-रोते हँसा चुके हम दम
हँसते-हँसते रुलायेगी दुनिया

देख वोह नब्ज़ सरवरी छूटी
वोह किरन इनक़िलाबकी फूटी

—आजकल १५ जुलाई १९४६

क़ब्रोंकी चीख़

सुना है आतिशो-ख़ूंमें नहा चुकी दुनिया
ज़मींके तौक़ो-सलासल गला चुकी दुनिया
अगर यह सच है, कि मुर्दे उछाल चुके मदफ़न
अगर यह सच है शहीदोंके बिक चुके हैं कफ़न
अगर यह सच है कि बच्चे चबा चुका है वतन
अगर बरहना है अब भी बनाते गफ़्फ़ो-जमन

.. ..

तो ज़लज़लोंका अभी इन्तज़ार जारी है
चमन पै बारिशे-बर्क़ो-शरार जारी है

—निगार नवम्बर १९४५

ख़ल्वाके-कायनातसे

सुलगती हुई दुकानें, सुलगते हुए बाज़ार
फ़र्लों भी धुआँधार हैं, गिरजन भी धुआँधार
हँसते हुए लब, ज़ख़्म उगलते हुए सीने
तूफ़ाँके तलातुम किनारों पै सफ़ीने

—निगार मई १९४१

नरमेध-यज्ञ

प्रो० 'शोर' अलीग—

दुनिया

[साम्प्रदायिक हत्याकाण्डकी भविष्यवाणी]

ख़ून इतना बहायगी दुनिया
ख़ूनमें डूब जायगी दुनिया
गुदड़ियोंमें सुलग रही है जो आग
मसनदोंमें लगायेगी दुनिया
गुस्ले-सेहतके वास्ते इकबार
फिर लहूमें नहायेगी दुनिया
जिनकी लौसे चमन धुआँ देंगे
फूल ऐसे खिलायेगी दुनिया
साजे-तहज़ीबे-नौके-तारों पर
ख़ूँ चुका गीत गायेगी दुनिया
जिनको तरसी है किश्तियाँ सदियों
अब वोह तूफ़ाँ उठायेगी दुनिया
इक तरफ़ रोयेगी लहू फितरत
इक तरफ़ मुसकरायगी दुनिया
ताजे-कैसर असाये-सुल्तानी
ठोकरोंमें उड़ायेगी दुनिया
रोते-रोते हँसा चुके हम दम
हँसते-हँसते रुलायेगी दुनिया

देख वोह नब्ज़ सरवरी छूटी
वोह किरन इन्क़लाबकी फूटी

—आजकल १५ जुलाई १९४६

फ़ाक़ोंकी चीख़

सुना है आतिशो-ख़ूँमें नहा चुकी दुनिया
ज़मींके तौक़ो-सलासल गला चुकी दुनिया
अगर यह सच है, कि मुर्दे उगल चुके मदफ़न
अगर यह सच है शहीदोंके बिक चुके हैं कफ़न
अगर यह सच है कि बच्चे चबा चुका है वतन
अगर बरहना हैं अब भी बनाते गङ्गो-जमन

.. ..

तो ज़लज़लोंका अभी इन्तज़ार बाक़ी है
चमन पै वारिशे-बर्क़ो-शरार बाक़ी है

—निगार नवम्बर १९४५

ग़ल्लाके-कायनातसे

बुझती हुई दुकानें, सुल्गते हुए बाज़ार
फ़स्लें भी धुआँधार हैं, ख़िरमन भी धुआँधार
हँसते हुए लब, ज़हर उगलते हुए सीने
तूफ़ाँके तराशीदा किनारों पै सफ़ीने

—निगार मई १९४६

सीमाब अकबराबादी—

ऐ बाये वतन बाये!

. . . .

आज़ाद गुलामोंसे फ़ज़ा खेल रही है,—बाज़ी यह नई है,
पर्देमें तास्सुबके फ़ना खेल रही है,—तूफ़ाने-खुदी है,
तसवीर जहन्नुमकी है, फ़िरदौसे कुहन बाये, ऐ बाये वतन बाये,
है दामने-मग़रबपै र वाँ ख़ूनके दरिया—देखा नहीं जाता,
मशरिक़में फिर उठनेको है सोया हुआ फ़ितना—आसार हैं पैदा
महफ़ूज़ नहीं आबरूए-गङ्गो-जमुन बाये—ऐ बाये वतन बाये

.. ..

लाशोंसे गुलिस्ताने-वतन पाट रहे हैं, जज़्बे यह नये हैं,
आपसमें ही सब अपना गला काट रहे हैं, दीवाने हुए हैं,
अँरज़ा है, अजल बे मददे दारो-रसन बाये, ऐ बाये वतन बाये,
—शाइर अगस्त १९४७

मोहनसिंह दीवाना—

क़फ़स

अल्लाह, लड़ रहे हैं, क़फ़समें दो मुर्ग़ज़ार
क़म्मामे-आबो-दाना क्या चुपके-से कह गये?

घर कर गई है, आह, गुलामी कुछ इस क़दर
आज़ादियोंके ख्वाब भी आनेसे रह गये
क्या अपने चार तिनकोंका अफ़सोस कीजिए
तूफ़ाँ वह था कि जिसमें बहुत क़िले ढह गये

हम क्या कहें कि हिज्रमें कटती है किस तरह
जी हल्का हो गया ज्यूँ ही दो आँसू बह गये
तसलीम दोस्ती थी यह कुछ बुज़दिली न थी
कहरे-ख़ुदा समझके तेरा ज़ुल्म सह गये

—आजकल, १ जून १६४६

अफ़सर अहमदनगरी–

नज़्म

धुन्धलके यासके छाये हुए हैं,
दिलोंके फूल कुम्हलाये हुए हैं,
महो-ख़ुरशीदका क्या ज़िक्र 'अफ़सर'
सितारे भी तो गहनाये हुए हैं,

—शाइर जुलाई १६४७

निसार इटावी–

ऐ वतनके पासबानो होशयार !
जान खतरेमें है, दिल ख़तरेमें है,
इर्तबाते[1]-आबो-गुल ख़तरेमें है,
आदमीयत मुस्तकिल ख़तरेमें है,
जिन्दगानी है, सरापा इन्तशार[2]
ऐ वतनके पासबानो होशयार

.. ..

दीन लुटनेको, धरम लुटनेको है,
हुरमते-दैरो-हरम लुटनेको है,
अंजुमनका कैफो-कम[3] लुटनेको है,

१. मेल मिलाप; २. परेशान, दुखित; ३. कैसा और कितना।

लुटने वाला है मुहब्बतका वक़ार
अंजुमनके पासबानो होशयार

हाय यह इन्सानियतका इरतका[1]
बतने-औरत[2], मेड़िये जनने लगा
आदमी हैवॉसे बाज़ी ले गया
बन गया मैदाने-आलम कार ज़ार,
ऐ वतनके पासबानो होशयार,

.. ..

—शाइर मार्च १६४७

तुर्फ़ा कुरैशी—

आलमेनौ

यह करतो-ख़ूँका आलम, यह हविसकी गर्म बाज़ारी,
यह आतिशरेज़ तैय्यारे, यह तोपें और बमबारी,

... .

यह हिन्दुस्ताँ जहाँ तक़दीर भी करवट बदलती है,
यह हिन्दुस्ताँ जहाँकी सरज़मीं सोना उगलती है,
यहाँ और नाव काग़ज़की चले अल्लहरे महरूमी,
यहाँ और ज़ुल्मकी टहनी फले ऐ वाये मज़लूमी !

—शाइर जनवरी १६४८

१. आचरण; २. औरत का जिस्म।

वह ख़राबी की है, इस भटके हुए इन्सानने
अपनी आँखें बन्द करलीं शर्मसे शैतानने

... .

नामुरादो, जालिमो, बदबख़्त, मूज़ी, भेड़ियो !
ऐ दरिन्दो, अहरमनके नायबो, ग़ारत ग़रो !
ऐ लुटेरो, वहशियो, जल्लाद, गुण्डो, मुफ़सदो !
तुमने इन्सानियत, रोना मुबारक हवसियो !
रख दिया सारा वतन लाशोंसे तुमने पाटकर
पारा-पारा कर दिया इन्सानका तन काटकर
गरदनें तोड़ी है, लाखों गुल रुख़ाने-क़ौमकी
इस्मतें छीनी है तुमने मादराने-क़ौमकी

मुसल्मानोंसे

सच बताओ ऐ मुसल्मानो ! तुम्हें हक़की क़सम
क्या सिखाता है, तुम्हें क़ुरआन यह जौरो-सितम ?
मज़हबे-इस्लाम रुसवा है, तुम्हारी ज़ातसे
दिन तुम्हारे जुर्म क्या तारीकतर हैं रातसे

हिन्दुओंसे

सच बताओ हिन्दुओ ! तुमको अहिंसाकी क़सम
जज़्बए रहमोकरम और गाय-रक्षाकी क़सम
क्या तुम्हारे वेद-गीताकी यही तालीम है ?
रामो-लछमन और सीताकी यही तालीम है ?

अपने रूठोंको मनाओ, हम-बगल हो एक हो,
रस्मे-उलफ़त देखकर दुनिया कहे तुम नेक हो

.. ..

—शाइर मई १९४८

शमीम करहानी—

यादे-कारवाँ

२५ में से १ बन्द

बता ऐ हमनशीं[1] ! क्या शाद[2] है, अहले-दयार[3] अब भी ?
वतनकी ख़ाक है, आईनए-बाग़ो-बहार[4] अब भी ?
लहकते है, दिलोंमें ज़िन्दगीके मर्ग़ज़ार[5] अब भी ?
ब-अम्नो-ऐश है, सीमीतनाने जोयबार अब भी ?
ब-ख़ैरो-आफ़ियत हैं, आहुआने-कोहसार अब भी ?

.. ..

चटानें, फूल, काँटे, खेत, फलियाँ ख़ैरियतसे है ?
कुआँ, तालाब, पनघट, बाग़, कलियाँ ख़ैरियत से है ?
मेरे साथी और उनकी रंगरलियाँ ख़ैरियत से हैं ?
लड़कपन जिनमें खेला था, वोह गलियाँ ख़ैरियत से है ?
जुनूँ[6] जिस बनमें जागा था, वह बन है, सायेदार[7] अब भी ?

.. ..

१. पड़ोसी, २. प्रसन्न; ३. देशवासी; ४. उपवनकी बहार; दर्पणकी तरह स्वच्छ, ५. हरियाली; ६. यौवनोन्माद; ७. छायावाला।

छलकती है, शराबे-जिन्दगी दिलके [1]अयाग़ोंमें ?
जूनूँकी लौ दिलोंसे दौड़ आती है, दमाग़ोंमें ?
सितारे आके मिल जाते हैं बस्तीके चराग़ोंमें ?
घटा घनघोर उठती है, तो क्या आमोंके बाग़ोंमें ?
पड़ा करते हैं झूले, गाये जाते हैं मल्हार अब भी ?

....

जो ऋतु बादलकी आती है, तो क्या मेरी तरह साथी ?
हवा जंगलकी गाती है, तो क्या मेरी तरह साथी ?
नदी छागल बजाती है, तो क्या मेरी तरह साथी ?
घटा पागल बनाती है, तो क्या मेरी तरह साथी ?
फिरा करता है, जंगलमें कोई दीवानावार अब भी ?

....

नया दीवानापन होता है, सावनकी हवाओंमें ?
जुनूँका शोर उठता है, पपीहोंकी [3]सदाओंमें ?
दिया-सा जलके बुझता, बुझके जलता है घटाओंमें ?
अँधेरी रात आती है, तो क्या भीगी [4]फ़ज़ाओंमें ?
अचानक जगमगा उठते हैं, जुगनूँ बेशुमार अब भी ?

....

---

१. प्यालोंमें; २. पायजेब, झाँझन; ३. आवाज़ोंमें; ४. बहारोंमें ।

ब-वक्ते-शाम रंग आता है जब तारोंके दरपनमें
शफ़क़[1] मीना बिछा देती है, मैदानोंके दामनमें
लगाये-इन्तज़ारे-शौक़की[2] इक आग तन-मनमें
गलीके मोड़पर छोटी-सी फुलवारीके आँगनमें
खड़ी रहती है, इक मालिन लिये बेलेका हार अब भी ?

.. . .

जब आँचल डाल देते हैं, फ़ज़ापर[3] शामके साये
हवामें तैरने लगती हैं चीलें परको फैलाये
घरोंकी मिस्ल[4] बजती घण्टियाँ गर्दनमें लटकाये
चरागाहोंसे गाँवोंको पलटते हैं जो चौपाये
तो उठता है फ़ज़ामें सुर्मा-आलूदा[5] ग़ुबार[6] अब भी ?

. . . .

बयाबाँकी[7] हसीना[8] जब क़िस्मसे छूट जाती है,
खड़ी चौखट पे घरकी रात-दिन आँसू बहाती है,
उसी धुनमें हवा जब दोपहरकी खाक उड़ाती है,
गलीमें डाकियेके पाँवकी आहट जो पाती है,
तो पहलूमें धड़कता है, दिले-उम्मीदवार अब भी ?

... .

१. ऊषा; २. देखनेकी लालसा; ३. रंगीनिखार; ४. तरह, ओर; ५. काले रंगका; ६. धूल; ७. जंगलकी; ८. सुन्दरी।

हवाए-ख्वाहिशो-तूफ़ाने-एहसासातमें[1] तनहा
ग़मे-आशिक़में[2] गुम डूबी हुई जज़्बातमें[3] तनहा
किसी महबूबसे[4] मिलनेको आधीरातमें तनहा
कोई महवश[5] जवानीकी भरी बरसातमें तनहा
कभी आकर जलाती है, दिया नद्दीके पार अब भी?

. .. .

चमनमे, चाँदनीमे, चाँदसे, बाग़ोंसे लालोंसे
घटामे, दश्तमें[6], कोहसारसे[7], चश्मोसे[8], नालोंसे
बुताने-वादी-ओ-सहरासे[9], बस्तीके ग़ज़ालोंसे[10]
कोई ऐ काश कह देता वतनके रहनेवालोंसे
कि तुमको याद करता है, शरीमे-बे-दयार[11] अब भी

.. . .

'सबा' मथरावी—

तक़सीमे-चमन

बढ गये बेला-चमेली, मोतिया, नरगिस, गुलाब
जो नज़रमें खार थे वह खार बनके रह गये
हो गया हर-हर रविश, हर-हर शजरका इन्तख़ाब
खुश्क पत्ते हसरते-दीदार बनकर रह गये

---

१. भावनाओंके तूफानों और अभिलाषाओंकी हवाओंमे; २. प्रेमीके वियोगमें दुःखी, ३. भावना-नदीमे ४. प्रेमीसे, ५. प्रेयसी; ६. मार्गसे, ७. पर्वतसे, ८ झरनोंसे, ९ घाटियों और जंगलोंकी सुन्दरियोंसे, १० शहरोंकी मृगनयनियोंसे, ११. बेवतन, बेघर।

बट गया सहने-गुलिस्ताँ, आशियाने बट गये
बाग़बाँ देखा किया, वे आशियानोंका मआल
हर तरफ़ औराक़े-गुलशनके फ़साने बट गये
रह गये-वे-सख़्त टुकड़े बनकर इक लाहल सवाल

दामने-गुलचीं भी पुर था, बाग़बाँका कुंज भी,
थी मगर दोनोंके दिलमें, सिर्फ़ थोड़ी-सी खटक,
ख़ुश्क पत्ते और काँटे झाड़नेकी फ़िक्र थी,
बस रही थी ज़हनमें, रंगीन फूलोंकी महक,

दफ़अतन अँगड़ाइयाँ लेती हुई आँधी उठी
मशरिक़ो-मग़रिबमें गुल्शनके अँधेरा छा गया
पेड़ टूटे, आशियाँ उजड़े, क़यामत आ गई
बाग़बाँ थर्रा गया गुलचीं भी ठोकर खा गया,

मंज़िल्प पर कुछ लुटे, कुछ राहमें मारे गये,
बारे-गुल्शन हो गये जो थे कभी जाने-चमन
रौंद कलियोंकी गई, फूलोंके नज़्ज़ारे गये
लुट गई शाखे-नशेमन मिट गई शाने-चमन

—शाइर दिसम्बर, १९४७

'निसार' इटावी—

मुस्लिम लीगियोंको यहाँ छोड़कर जब जिन्ना करॉची चले गये—

गहे तहनमें रहबर छोड़ गया कहाँ मुझे ?
अब है, न मौतकी उमीद और न ज़िन्दगीकी आस

—शाइर दिसम्बर १९४७

'गजा' दूसरी कड़ी–

शाहन्शहार[1]

.. ..

ग़मज़ोंमें बर्क़ नींदें[2] ?
मज़ारोंमें आगके डेरे[3] ?
आफ़ताबोंमें ज़ुल्मतके गिलाफ़[4] ?
मौजे-ऐशमें ग़मके शिगाफ़[5] ?

....

ग़मकी परछाइयाँ तबस्सुममें[6]
ज़ुल्मतें ख़्वाबगाहे-अंजुममें[7]
लूएँ गुलिस्तानोंमें बादे-समूम[8]

आशियानोंमें अन्दलीबके बूम[9]
हाथमें ज़ुल्फ़के ख़िरदकी अनाँ[10]
बर्फ़ज़ारोंमें क़ैद बर्क़े-तपाँ[11]
नग़मे-मज़रूह[12] साज़ोदफ़ ज़ख़्मी[13]
सोज़े-दिल न रूहमें गरमी[14]

१. शैतानी, २. धनुके कणोंमें बिजलियाँ; ३. कब्रिस्तानोंमें आगके डेरे, ४. सूरजों पर अन्धेराके खोल; ५. खुशी दिलों पर दुःखोंकी दरार; ६ मुसकानमें दुःखकी छाया, ७ नक्षत्रोंके शयनागारमें अँधेरे; ८. फूलोंके महलोंमें गरम हवाएँ; ६. बुलबुलके घोंसलोंमें उल्लू; १०. मूर्तिके हाथोंमें बुद्धिकी बागडोर, ११. बर्फोंमें कौंदती बिजली क़ैद; १२. संगीत घायल; १३. वाद्य और डफ ज़ख्मी; १४. न दिलमें तड़प न आत्मामें जोश।

यह लहू चाटते हुए शोले[1]
गिरती बिजली बरसते अँगारे
क़ौमके सरपै नक़बतोंके[2] ताज
इल्मकी[3] पस्ती, जिस्मकी मैराजें[4]

ताको–महराब खूनसे लबरेज़
यादगारे – हलाकुओ – चंगेज़
जहर तिरयाक़के सेबचोंमें
मौत इन्सानियतके कूचोंमें

भेसमें आदमीके चौपाये
यह हलाकतके रेंगते साये
जहन सदियोंकी वहशतोंका मज़ार
मुर्दा-मुर्दा जहनकी झंकार

खूँ उगलते हुए बुलन्दो-पस्त
नेश्तर[5] कितने रूहमें पेवस्त
आदमी शैतनतके ज़ीनोंपर[6]
इस्मतोंका लहू ज़बीनोंपर[7]

भेड़िये मुअतकफ़ मसाजिदमें[8]
खूनकी होलियाँ मुआबदमें[9]

—

१. चिनगारियाँ, २. ज़िल्लतों, दरिद्रताओंके; ३. बुद्धवादकी हीनता; ४. आधिभौतिकताका आदर्श, ५. नश्तर, ६. शैतानियतकी सीढ़ीपर; ७. शोलका रक्त माथोंपर; ८ मस्जिदमें भेड़िये एकान्तवाली हों, ९. नमाजियोंने खूँनकी होली खेली आवे।

तेज़ संगीन नर्म सीनोंपर
ज़र्द चट्टानोंकी आबगीनोंपर[1]
ज़िन्दगीकी अब सहर[2] क्या हो,
ग़ारते तीरगी[3] उजालोंको
हम ख़राबेमें ज़िन्दगानीके
शोब्दागहमें दहरे-फ़ानीके
आदमीकी तलाश है मुझको
—निगार मार्च १९५१

'नाज़िश' परतापगढ़ी—

ख़ुन-तराश
२२ मॅंसे १३ शेर

यह किन रगोंसे बनाये गये हैं, साग़ेतरब
यह किसके कास-ए-सरसे बने हैं, जामो-सुबू
हरेक ऊँचे महलपर बरस रही है बहार
मगर यह किसका पसीना है, और किसका लहू ?
यह जर्रें जिनको कोई पूछता न था कल तक
हमारे ख़ूनके बल पर बने महे–कामिल
हमीको भूल गये हैं, वह कारवाँ वाले
हमारी लाशपर चलकर जो पागये मंज़िल
मिठाके दोशपै जिनको निकाला पस्तीसे
पहुंचके अर्शपै वह लोग हमको भूल गये
हमारे रहनुमाँ कितने ख़ुदगरज़ निकले
मिला जो ऐश तो चाराने-ग़मको भूल गये

१. शीशे चट्टानोंसे टकराये जायें; २. सुबह; ३. अँधेरी।

मगर नदीम ! सलामत है अपना जोशे-जुनूँ
बुलन्दियोंके सितारोंको नोच सकते हैं,
नहीं है, काल हमारे लहूकी गरमीका
महलके ऊँचे मिनारोंको नोच सकते हैं,

हमारे हक़में वही आज बन गये क़ातिल
हमारी हुस्ने-नज़रने जिन्हें सँवारा था
हुए हैं, आज वह इसनाम हममें बेगाना
जिन्हें चटानोंसे हमने कभी उभारा था

नदीम चाहें अगर हम तो अपने क़ातिलसे
नज़रको फेरलें और ख़ाक हो यह हुस्ने-तमाम
वही है तैश, वही हम, वही चट्टानें हैं,
उभार सकते हैं, लमहोंमें अनगिनत असनाम

—शाइर जून १९५१

'अफसर' सीमावी—

ज़िन्दगीकी राहें

सावनमें भी है यह ख़ुश्क साली
इक बूँदको दिल तरस रहा है,
पानीके बजाय आसमाँसे
इन्साँका लहू बरस रहा है,

—शाइर जनवरी १९५२

साकी जावेद बी० ए०—

दोस्त

हल्क़ए-एहबाबमें[1] है, भेड़िये और नाग भी
लाला-ओ-गुल भी है, गुलशनमें दहकती आग भी
हमरहाने-शौक़ कुछ मासूम, कुछ चालाक है,
यानी कुछ ईसानफ़स[2] है, और कुछ ज़हहाक[3] है
एक ही जादहपै[4] है ज़रदार[5] भी दहकाँ[6] भी आज
एक ही मंज़िल पै है इबलीस[7] भी इन्साँ भी आज
चढ़ रहा है, आज हर पीतलपै इक चाँदीका खोल
अल्लाह-अल्लाह कंकरोंके साथ यह हीरोंका तोल
यह तस्वातुबकी[8] सजावट, यह तकल्लुमका[9] सिंगार
सादगीके हल्क़पर आदाबके खंजरकी धार
आह यह लहजोंका मरहम, आह यह लफ़्ज़ोंके घाव
हर क़दम पर इक गुलिस्ताँ, हर क़दम पर इक अलाव[10]
क़ुदसियोंकी अंजुमनमें[11] अहरमनज़ादे[12] भी हैं
नूरकी वादीमें लाखों आगके जादे[13] भी हैं
सागरे जम-जममें भर कर ज़हर भी देता है, वक़्त
एक ही शीशेसे दोनो काम अब लेता है, वक़्त

—निगार सितम्बर १९५३

---

१ इष्ट मित्रोंमें, २ ईसाकी तरह भद्र, ३ ईरानके एक ज़ालिम बादशाहका नाम, रिवायत है कि उसके दोनो मोंढ़ा पर दो साँप पैदा हो गये थे, उनकी खुराक आदमियोंका मस्तिष्क था, ४. जगह, ५. धनी, ६ किसान, ७. शैतान, ८ वैमनस्यकी, ९ वार्तालापका; १० आगका ढेर; ११ देवताओंकी सभामें, १२ अधार्मिकोंकी सन्तान, १३. पगडंडियाँ।

शफीक जौनपुरी—

गज़ल

तामीरे-चमनके नामसे अब, तखरीबे-गुलिस्ताँ होती है,
अन्धेर तो देखो बादे-खिज़ाँ गुलशनकी निगहबाँ होती है,

क्या वक्त है, रंगीनी भी चमनके जख्मका उनवाँ होती है,
हर फूलकी सुर्खी जैसे नजरमें खूने-शहीदाँ होती है,

शबनमके तो क्या आँसू पूछें, अपना ही गरेबाँ चाक करें
मालूम नहीं फूलोंकी हँसी किस दर्दका दरमाँ होती है,

हम बादिए-गुरबत वालोंको उम्मीदे-रफाकत क्या होगी ?
ऐ अहले-चमन ! जब निकहते-गुल तुमसे भी गुरेजाँ होती है

तमहीदे-तसादम हो न कहीं साकी ! यह खनक पैमानोंकी
मौजोंमें तलातुम होता है, जब आमदे-तूफाँ होती है,

गुलज़ारमें कल जिसका नगमा पैगामे-मसर्रत बनता था,
उस वक्त उसी तायरकी सदा फरियादे-गरीबाँ होती है,

ऐ अहले-हरम जो करती है, पर्देको जलानेकी कोशिश
देखा है, वही बिजली अक्सर काबेकी निगहबाँ होती है,

ऐ चर्ख ! तेरे सूरजकी खुशामदका वह ज़माना खत्म हुआ।
अब ख़ाक नशीनोंकी बस्ती ख़ुरशीद बदामाँ होती है,

—शाइर जुलाई १९५१

'तुर्फ़ा' क़ुरैशी—

आलमे-नौ
२४ शेरमें-से ६ शेर

यह क़त्लो-ख़ूँका आलम, यह हविसकी गर्म बाज़ारी
यह आतिशरेज़ तैयारे, यह तोपें और बमबारी
यह ज़ुल्म आराइयाँ, यह जौरो-इस्तबदादका आलम
ब-इबनाए-वतनकी ग़म असर फरियादका आलम
यह क़हरो-जब्र, यह ज़ुल्म आफ़रीनी यह शररबारी
यह हंगामे क़यामतके यह शोले, यह तबहकारी

.. . .

यह हिन्दोस्ताँ जहाँ गौतम, जनक, दशरथ हुए पैदा
यह हिन्दोस्ताँ जहाँकी खाकसे राजा अशोक उट्ठा

.. . .

यह हिन्दोस्ताँ जहाँ तक़दीर भी करवट बदलती है,
यह हिन्दोस्ताँ जहाँकी सरज़मी सोना उगलती है
यहाँ और नाव कागज़की चले अल्लाहरे महरूमी
यहाँ और ज़ुल्मकी टहनी फले ऐ वाये महकूमी

—शाइर जनवरी १६४८

•

जनता राज

ज़ाहिद सोथरवी—

फ़रेबे-नज़र

तुम तो कहते थे वतनमें इन्क़लाब आने तो दो,
ख़ाक में मिल जायगा मनहूस ख़्वाबोंका शबाब,
आदमीयतके सरे अक़्दसपे होगा ताजे-ज़र
और अपने आप वाँ हो जायगा ख़ुशबूका बाब

. .. .

तुम तो कहते थे नये ख़ुरशीदकी शादाब धूप
झोपड़ों पर जिन्दगी की रोशनी बरसायेगी,
ख़त्म हो जायेगा दौलत और महनत का नज़ाअ
मुल्क भर में शान्ति ही शान्ति लहरायेगी

. . . .

तुम तो कहते थे कि मिट जायेगा महकूमी के साथ
चोरबाज़ारी का और रिशवत सतानी का चलन
ख़त्म हो जायेगी चोरी, रहज़नी, ग़ारतगरी
और सड जायेगा फरसूदा रिवाजों का बदन
तुम तो कहते थे—मगर मैं देखता हूँ आज भी
दामने-इन्सानियत काँटों में है, उलझा हुआ
आज भी फ़िक्रो-नज़र पर है ग़ुलामी का दबाव
जिन्दगी की राह से इन्सान है भटका हुआ

....

मुल्क में अब तक गुलामी के फसूँ आबाद हैं,
और तुम कहते हो हम आज़ाद हैं, आज़ाद हैं।

—शाइर अप्रैल १९५०

सबा मथरावी—

आज़ादी

इक क़यामत-सी है बरपा अंजुमन दर अंजुमन,
चीख़ते हों जैसे मुर्दे फाड़कर अपना कफ़न
ज़िन्दगी फ़रियाद बरलब, बरबरैयत नाराज़न,
आदमीयत सर्फ़े-मातम क़ौमियत सर्फ़े-मुहन,
कहते हैं आज़ाद होनेको है अब मेरा वतन

बन्दशोलाबार, जैकारोंमें आज़ादीके राग,
हुर्रियत ज़ादोंके मुँहमें इश्तआल अंगेज़ झाग,
ऐसी आज़ादीमें अच्छा है लगादे कोई आग
इख्तलाके-बाहमीसे हो गया जीना मरन
कहते हैं आज़ाद होनेको है अब मेरा वतन

ख़ूनमें भीगी ज़मी, शोलोंसे झुलसा आसमाँ
बस्तियाँ लूटी हुई सहमी हुई आबादियाँ
ज़िन्दगीकी महफ़िलोंमें मौतकी ख़ामोशियाँ
है वफ़ूरे-कश-म-कशसे साँस लेना भी कठिन
कहते हैं आज़ाद होनेको है, अब मेरा वतन

हर तरफ हमले चढाई, क़त्लग़ारत, लूट-मार,
लकडियाँ, भाले, छुरे, चाक़ू, सना, ख़ंजर, कटार,
बम, पटाख़े, गैस, शोले, आग, तोपें, बेशुमार,
हर कदमपर हो रही है, साज़िशें हिम्मत शिकन
कहते हैं आ ज़ाद होनेको है अब मेरा वतन।
आह बच्चों और बूढोंपर जवानोंके करम,
औरतोंपर सूरमा मर्दोंके हमले दम-ब-दम,
आफ़ियत-कोशोंकी हालतपर क़यामतके सितम
हर नज़रमें हश्र बरपा, हर जबींपर इक शिकन,
कहते हैं, आज़ाद होनेको है, अब मेरा वतन।
हर तरफ इक बेसकूनी, हर तरफ इक इन्तशार,
सरहदे-पंजाब क्या और क्या नवाख़ाली, बिहार,
गोशा-गोशा मु ज़तरिब है, चप्पा-चप्पा बेक़रार,
फूटका पौदा हुआ है, फैलकर सायाफिगार,
कहते हैं, आ ज़ाद होनेको है, अब मेरा वतन।
—शाहर जून १९४७

फज़ा इब्न '.फ़ैज़ी'—

सुबहे-काज़िब

ख़ाम कितना था सियासतके तबीबोंका शऊर ?
करवटें बदलने लीं, आँख शगूफ़ोंकी खुली ?
रूह मासूम शगूफ़ोंकी सनानों पै तुली,
.ख़ून पानी हुआ, दीवार गुलिस्तोंकी धुली,
बन गया ज़ख़्मे-वतन चार ही दिनमें नासूर।
....

ज़िन्दगी है यहाँ ख़ुद अपनी निगाहोंमें हक़ीर–
ये महो काहकशाँ गर्दे यह क़ाविश गर्दे,
मुस्कराये कहीं तारे न कहीं फूल खिले,
गर्दे-ज़रकी नाज़ीमिको ख़ुरशीद झुके,
हाय आज़ाद ग़ुलामोंका यह मजबूर ज़मीर!

... .

दौलतो-ग़ारती नुमाइश यह स्यासोंका निखार–
यह सियामतका ख़ुमो-चश्म यह अक्सी-गौहर,
यह चमकते हुए ओहदे, यह चमकते लीडर,
ख़ुमे तेज़ाबमें हैं, शहदकी मस्ती बनकर,
मुल्को-मिल्लतके ठिगमेके यह अनूठे किरदार

.. ..

—निगार अप्रैल १९५१

ये चीख़ती चोटें सीनेकी, यह बोलते आँसू आँखोंके
डूबे हुए करबो-काविशमें ग़मनाक तबस्सुम होंटोंके
रिसते हुए नासूरोंकी दुर्का ज़ख़्मोंकी कराहोंके गाहक
यह इस्मतो-दर्दके सीनेमें जुर्मोंके ख़राशोंके दीपक

—शाइर जनवरी १९५१

एक महाजरीन–

जश्ने-आज़ादी

लेकिन इस दरगाहके बाहर हज़ारों मील तक,
वे कफ़न लाशोंकी बू थी और हवाओंकी सनक,
काँपते बच्चोंके सर, सहमी हुई माँओंके हात
हाँपते मुर्दोंके रौं, चलते शहीदोंकी बरात

१. मृतकों का समूह।

चीखते ढाँचोंकी खाई बोलते मर्दोंके ग़ार
रेंगते तारीक साये, नाचते ख़ूनी गुबार

बिलबिलाते गाँव, रोते शहरियोंकी टोलियाँ
भागती माँओंके सीने से निकलती गोलियाँ
ख़ूँ चुका बुर्क़े, सुलगती चादरें, जख़्मी सुहाग
इस्मतोंकी हड्डियोंको चाटती शोलोंकी आग

उलफ़तोंकी चीख़ टूटी चूड़ियोंकी सिसकियाँ
जो ज़मींमें बोलता था, आह उस ख़ूँके निशाँ

वोह रगोंका टूटना वोह ज़िन्दा लाशोंकी कराह
आह वोह झुलसे हुए ऐमाल वोह चेहरे सियाह
वोह सुलगते शहर, वोह जलता हुआ चर्बीका तेल
वोह नहा कर ख़ून में घुलते हुए तूफ़ान मेल

एक तरफ माथोंका विरसा सरगराँ मज्दोंका दाग़
एक तरफ बुझते हुए महराबो-मैम्बरके चराग़

इक तरफ तेग़ोंके सायेमें कलाहोंका ग़रूर
एक तरफ कुरआन-ओ-काबा सबके सब ज़ख़्मोंसे चूर
एक तरफ पैग़म्बरो-जिबरील-य ज़दाँ ज़ेरे-दाम
एक तरफ वे काबाओ-बे-मस्जिदो मेंबर इमाम
इक तरफ शीशेसे टकराते हुए गुल रंगे-जाम
एक तरफ अपनी भी माका दूध बच्चेपर हराम

इस तरफ़ ईदें उधर क़ुर्बानियों का इन्तज़ाम
इस तरफ़ हँसने ख़ुशी का उस तरफ़ रोते इमाम

इस तरफ़ 'परमिट' की दीवारें उधर संगी ज़मीर
उठ नहीं सकते ग़रीबाँ हिल नहीं सकते अमीर
यह उजालेकी तबाही, यह धुँधलकेका अज़ाब
है कोई ऐ महरे-ताबाँ इस सवेरेका जवाब

आह यह अस्मोंकी दूकानें यह नासूरोंका मोल
आँख कहती है, उठा नज़रें मगर मुँहसे न बोल

यह फटे बुरक़ोंके आँसू, यह नक़ाबोंकी कराह
ठोकरें खाते जराइम, लड़खड़ाते-से गुनाह,
भूककी बेचादरी, इस्मतकी उरियानी भी देख
इस भरे बाज़ारमें ज़ख़्मोंकी अरज़ानी भी देख

कितनी चीख़ोंकी सदा आई है, हिन्दोस्तानसे
आह कितनी कश्तियाँ टकरागईं तूफ़ान से

.. . .

बन्दा परवर जश्ने-आज़ादी है, बरपा शहरमें
आज यह अमरित तो पीना ही पड़ेगा ज़हरमें

—निगार सितम्बर १९५०

अफ़सर सीमाबी अहमदनगरी—

तारीक मक़बरा

यह क़हत-क़होंके जहन्नुम, यह जल-जलोंके वतन
ख़िज़ाँ-फ़रोश बहारें, शगूफ़ा-सोज़ चमन

न पूछ कितने शरारे हैं, मर्द आहोंमें
भटक रहे हैं, उजाले सियाह राहोंमें
अयाँ है, ज़ुल्मते-किरदार किन जबीनोंसे
टपक रहा है, लहू, कितनी आस्तीनोंसे
यह रंगो-नूरके हासिद, यह ज़िन्दगीके रक़ीब
उठाये फिरते हैं बेरूह जन्नतोंके सलीब

.. . .

शिकार खेल चुका आस्माँ शहीदोंका
सनम कदा है, कि मदफ़न ख़ुदा रसीदोंका
बदल गई है घटाओंकी नीयतें क्या-क्या
लुटी है, गंगो-हिमालयकी इस्मतें क्या-क्या
जब इन्क़लाब ज़मानेका रुख़ बदलता है,
तो फ़स्ले-गुल्में गुलोंका सुहाग जलता है,
नसीमे-ख़ुल्द लहूमें नहाके आती है,
नज़र ख़ुद अहले-नज़रकी हँसी उड़ाती है,
बना चुका है, जुनूँ कितने सुर्ख़ ताजमहल
निगाहो-फ़िक्रके तारीक मक़बरेसे निकल

—निगार जून १९५१

प्रो॰ 'शोर' अलीग—

आज़ाद ग़ुलामोंके नाम

... .

ऐ दिले-महराबो-मेम्बर, ऐ ज़मीरे-ख़ानक़ाह !
हिन्दके जिन्दा शहीदोंकी तरफ़ भी इक निगाह

तेज़ है, जिसके नफ़ससे आज हर लालेकी आग
इस हवासे बुझ चुके हैं, सच बता कितने सुहाग?

जिनके ज़ख्मोंपर पड़ा है, आज मिल्लतका नक़ाब
उन शहीदोंकी रगोंसे किसने खींची है शराब?

ख़श्त-ए-दीवारसे आती है, जिनके ख़ूँकी बू
आज उन्हींके ज़र्द चहरे देखकर हँसता है तू

कितनी गलियोंके ख़ुनक सायेमें कुम्हलाते हैं, रूप
आह किन चेहरोंको झुलसाती है आज़ादीकी धूप

.. . .

आज भी रीशो-अबा है, मस्जिदो-मेम्बरका सुद[1]
आज भी है, रौनके-बाज़ार काबेके यहूद[2]

.. . .

लब कुशाई अब भी है, हक्को-सदाकतपर हराम[3]
आज भी सुक़रातका है, ज़हरसे लबरेज़ जाम[4]

ऐतबारे-नाख़ुदा और बादबाँ कुछ भी नहीं[5]
बहरके सीनेमें जुज़ मौजे-रवाँ कुछ भी नहीं[6]

१ नमाज इबादतका उपहार लम्बी दाढी और ढीला चोगा है, २ आज भी काबेका बाजार यहूदियोंसे भरा हुआ है; ३. वाणीपर आज भी बन्धन है; ४ सुकरात जैसे सत्यवादियोंको आज भी ज़हरके प्याले पीने पडते हैं, ५. मल्लाह और नावके पाल विश्वस्त नहीं; ६. दरियामें बहावके अतिरिक्त क्या है।

इन शिकस्ता किश्तियोंके डूबनेका ग़म न कर
फ़ितरते-दरिया समझ[1], गरदाबका[2] मातम न कर
यह हवाएँ, यह अँधेरा, यह तलातुम[3], यह भँवर
हैं किसी तूफ़ाने-नौ-आग़ाज़के पैग़ाम्बर[4]
बहर[5] कहता है सफ़ीने[6] डूबकर रह जायेंगे
मौज[7] कहती है यह साहिल[8] दूर तक बह जायेंगे
कोई तुग़यानी[9] हो अपना रुख़ बदलती है ज़रूर
ना.ख़ुदा डूबे कि उभरे, मौज चलती है ज़रूर
—निगार जून १९५१

'अफसर' सीमावी अहमदनगरी—

दोज़ख़

छा गया कितने शगूफ़ोंपै[10] तबाहीका ग़ुबार
कितने सूरज है, ज़मानेमें अँधेरेका शिकार
ज़र्रा-ज़र्रा है, यहाँ सिद्क़-ओ-सफ़ाका[11] मदफ़न[12]
हसरतें बेचती फिरती है, शहीदोंके कफ़न

.. ..

रोज़े-रोशनके जलूमें[13] हैं अँधेरे कितने
बन गये काफ़िलए-सालार[14] लुटेरे कितने

---

१. दरियाका स्वभाव; २. भँवरका; ३. बहाव, ४. नवीन तूफानके सन्देश वाहक; ५. दरिया, ६. नाव, ७. लहरें; ८. दरियाके किनारे; ९. बाढ़; १०. फूलों पै; ११. सचाई, निष्पक्षताका; १२. क़ब्र, १३. प्रकाशमान महफ़िलोंमें; १४. यात्रीदलके नेता।

दीनो-दौलतके सनम, नस्लो-सियासतके सनम
यह फ़लाकतके बयाबाँ[2], यह अमारतके सनम[3]

कारवाँ[4] ख़ाकबसर[5]-शोलाचुकों राह गुज़ार
देख हर मोड़ पै वज्दानो-बसीरतके मज़ार[6]

यह तमद्दुनके[7] पुजारी, यह क़दामतके इमाम[8]
यही दुनिया है, तो या रब! तेरी दुनियाको सलाम

लहलहाते ही रहे जुह्लो-कयादतके अलम[9]
भूक खाती ही रही बिकती हुई इस्मतको[10] क़सम

तूने आदमको दिये ख़ुल्दो[11]-जहन्नुमके[12] फ़रेब
कभी तस्नीमके[13] धोके, कभी ज़म-ज़मके[14] फ़रेब

यह ख़ुदाई है तो पिन्दारे-ख़ुदाई[15] कब तक?

—निगार मार्च १९५१

'फ़ज़ा' इब्न फ़ैज़ी—

क्या ख़बर थी

क्या ख़बर थी कि रात आयेगी
ज़हरे-ग़म अपने साथ लायेगी

१-२. मुसीबतोंके बीहड़ जंगल; ३. शासक; ४-५. यात्रीदल धूल-धूसरित, व्यथित मार्ग रत है; ६. अनुसन्धानकर्त्ता और पारखियोंकी क़ब्रें; ७. संस्कृतिके, ८. प्राचीनताके अगुआ। ९. अन्धविश्वास और मूर्खताके झंडे; १०. शीलकी; ११. जन्नत; १२; दोज़ख़, नरकके; १३. जन्नतमें मदिराकी नहरके, १४. काबेमें वज़ू करनेका पानी; १५. सृष्टिका ख़याल।

हर सहर[1] होगी नूरका[2] मदफ़न[3]
हज़्म कर लेगा महरो-महको[4] गहन

....

गुलशनों पर हँसेंगे वीराने
मुसकरायेंगे अब बलाख़ाने

सीपको अपने छोड़ देंगे गुहर[5]
नाग बनकर डसेंगे ताजो-क़मर

सुबह खायेगी धूपकी क़समें
चाँदनी होगी रातके बसमें

—निगार जून १९५४

जश्ने-ग़ुलामी

ख़ूँ-चुकाँ[6] है फ़व्वारे, शोलाज़न[7] है, पैमाने
उफ़ यह रंगों-निकहतके मरमरी बलाख़ाने[8]

बागसे बयाबाँ तक इन्क़लाब बिखरे है,
ख़ूने-बेगुनाहीसे तख़्तो-ताज निखरे हैं,

पूजते है, पैमाने सोज़ो-तिश्ना कामीको
भूलती नहीं दुनिया रंजे-ना-तमामीको

जन्नतोंका धोका है, अब सियाह ख़ानोंपर
इशरतोंके सज्दे है, गमके आस्तानोंपर

---

१. प्रातःकाल; २. प्रकाशका; ३. क़ब्र; ४. चाँद सूर्यको; ५. मोती; ६. रक्तपूर्ण; ७. आगसे भरे हुए; ८. सुगन्धित वायुकी आफ़तोंमें पूर्ण भरके।

फूल बनके महँकी है, चोट कितने सीनोंकी
नेश्तर है, ग़ुरबतका, हर शिकन जबीनोंकी

उफ़! नसीम लौटेगी इस चमनसे क्या लेके
हाशिया लहूका है, हर वरक़पै लालेके

आह किन चराग़ोंने आँधियोंसे साज़िश की?
किन क़मर नशीनोंने रातकी परस्तिश की?

बन-सँवरके निकले है, बुत सियाहफ़ामीके
है, निगार ख़ानोंमें जश्न बस ग़ुलामीके

—निगार अगस्त १९५४

साकी जावेद बी० ए०—

नये सवेरे

ख़ुशा[1] कि क़िला-ओ-ईवाँसे[2] उठ रहा है, धुआँ
उभर रहे है, उफ़क़पर[3] नई सहरके[4] धुआँ

.. ..

चले निकलके वोह महलोंसे सर बिरहना[5] जलूस
उरुसे-नीलके जलवोंके बुझ गये फ़ानूस

१. मुबारक; २. क़िले और महलोंसे; ३. आसमानपर, ४. प्रातःकालने; ५. नंगेसर;

क़बा[1]-ओ-रीशके[2] रंगीन दाम[3] जलने लगे
दहकती आगमें मीरो[4]-इमाम[5] जलने लगे

ख़ुशा कि आज पुराने तिलिस्म टूट गये
सनमकदोंमें ख़ुदाओंके जिस्म टूट गये

मगर यह क्या कि उफ़क़पर है, सुर्ख़-सुर्ख़-सी आग
बनाते-माहे-सुरैयाका[6] लुट रहा है, सुहाग
सुलग रहे हैं हवाओंके रेशमी आँचल
धड़क रहे हैं, सितारोंके जगमगाते महल

ख़िरदकी आगमें तप-तपके ढल रहे हैं, शकूक[8]
मचल रही है, इरादोंमें जुहल[9]-ओ-जुर्मकी भूक

तरस रहे हैं, चरागोंको सुबहो-शामके ताक़
ज़मींपै आज रसूलोंका उड़ रहा है मज़ाक़

. . . .

बनाम-नूर चमकते हुए अँधेरे हैं,
नये उफ़क़में यह निकले हुए सवेरे हैं,

—निगार मार्च १९५३

१. ढीला चोगा; २. दाढ़ी; ३ जाल; ४. सर्दार; ५. मज़हबी नेता; ६. चान्द-नक्षत्र; ७. अक़्लकी, ८. सन्देह; ९. मूर्खता, दकियानूसी-ख़यालकी।

सड़कें बने मोड़

अंधी मारामारी—

ग़ज़ल

जनताका है जनता राज
लेकिन जनता है मोहताज

हमको आँखोंमें आँसू
बह गई उल्टी गंगा आज
आज है अपनोंका रोना
कल थे ग़ैरोंके मोहताज

किस-किसकी हम बात सुनें
हर कोई है, साहबे-ताज
जिसके पसीनेमें ख़िरमन
वह ख़ुद रोटीको मोहताज

अपनी दुश्मन है फिर भी
गूंगे हैं, कुछ काम न काज
माना कि बरबाद हुए
मिल तो गया हमको सोराज

हम वह माली हैं 'मुख्तार'
पेच दें जो गुलज़ारकी लाज

—शाहर जून १९५१

मजाज़ नियाजी—

१५ अगस्त १९५१ [२४ शेर में–से ६ शेर]

. .. .

हर-एक साँसमें पिन्हाँ है मुज़्महल-सी कराह
हर-एक गामपै रक़्साँ है, मौतका-सा जमूद

....

नज़रकी गोदमें अश्कोंकी आग जलती है,
है सुबहे-नौकी यह आमद कि धूप ढलती है,

. .. .

सुना तो यह था कि तक़दीरे-आशियाँ चमकी
गया वह दौरे-ख़िज़ाँ बज़्मे-गुलसिताँ चमकी

. . ..

मगर जो गौरसे देखा निगाहे-बीनामें
तो काँप-काँप उठे ज़िन्दगीके काशाने

... .

दिलोंमें टूटके उभरी हैं, दर्दकी फाँसें
क़दम-क़दमपै यह मदफ़न नज़र-नज़र लाशें

....

यह ईद

यह ईद, कैफ़ो-सरवरका[1] सरूद[2] गाती हुई
यह क़स्रे[3]-हाय इमारतको जगमगाती हुई

यह मोतियोंसे यह हीरोंसे खेलती हुई ईद
तजल्लियोंका[4] यह वादा[5] उँडेलती हुई ईद

निखारती हुई महलोंको, ख़ानक़ाहोंको[6]
निशाने-क़ुद्स[7] बनाती हुई, कुलाहोंको[8]

यह निकहतोंकी[9] ज़ियाओंके[10] साथ चलती हुई
यह ज़र निगार क़बाओंके[11] साथ चलती हुई
यह मुसकराती हुई बेकसों[12] यतीमोंपर[13]
यह बिजलियों-सी गिराती हुई हरीमोंपर[14]

बिसाते-वक़्तपै रखकर मसर्रतोंके अयाग़[15]
यह गमकदोंमें जलाती है, आँसुओंके चराग़

यह ईद जिससे दुआओंमें आग लगती है
दुखे दिलोंकी सदाओंमें आग लगती है

मसल रही है जो कलियाँ, जला रही है जो फूल
उड़ा रही है जो फ़ाक़ोंकी सुबहो-शामपै धूल

१ हँसी खुशीका, २. गीत, ३. महलोंको, ४. प्रकाशकोंकी; ५. मदिरा; ६. दरगाहोंको, ७. पवित्र चिह्न; ८. टोपियों, ताजोंको; ९. सुगंधियोंकी; १०. रोशनीमें, ११ सुनहरे लिबासोंके; १२. असहायों, १३. अनाथोंपर; १४ कावेकी चहारदीवारोंपर; १५. खुशियोंके मदिरा पान।

रुख़े-हयातपै बनकर जो भूक-प्यासका दाग़
जबीने-लातो-हुबलके[1], जल रही है चराग़

यह बन चुकी है ज़मानेमें मक्रो-फ़नकी असास[2]
ख़ुशीके नामसे टूटी है, इक रसूलकी आस

—निगार मई १९५४

सरोश असकारी तबातबाई—

असरे हाज़िर [२८ में-से ६]

जो कल था वह हयातका उनवाँ है, आज भी
इन्सानियतका नंग ख़ुद इन्साँ है, आज भी
महरूमे-सुबह कल भी थी इन्सानियतकी रात
मोहताजे-आफ़तावे-दरख़्शाँ है, आज भी
कल भी फ़सादो-क़त्लका बाज़ार गर्म था
ख़ुद मौत ज़िन्दगीसे पशेमाँ है आज भी
जो सिर्फ़ आदमी हो वोह कल भी कहीं न था
हिन्दू है कोई, कोई मुसल्माँ है, आज भी

.. ..

इन ज़ुल्मतोंसे फिर भी न मायूस हो 'सरोश'
देख इक किरन उफ़क़ पै दरख़्शाँ है आज भी

—शाइर अक्टूबर १९५१

१. उन मूर्तियोंके नाम जो इस्लामसे पूर्व काबेमें पूजी जाती थीं;
२ जड़, नींव।

अदीवी मालीगाँवी–

ग़ज़ल

कहनेको है जनता राज
लेकिन जनता है मोहताज

हुस्नकी आँखोंमें आँसू
वह गई उल्टी गंगा आज
आज है अपनोंका रोना
कल थे ग़ैरोंके मोहताज

किस-किसकी हम बात सुनें
हर कोई है, साहबे-ताज
जिसके पसीनेसे ख़िरमन
वह ख़ुद रोटीको मोहताज

अपनी हुकूमत है फिर भी
भूके हैं, कुछ काम न काज
माना कि बरबाद हुए
मिल तो गया हमको सोराज

हम वह माली हैं 'मुख़्तार'
वेच दें जो गुलज़ारकी लाज

—शाइर जून १९५१

मज्नूँ नियाजी—

१५ अगस्त १६५१ [२४ शेर में-से ६ शेर]

. ...

हर-एक साँसमें पिन्हाँ है मुज़महल-सी कराह
हर-एक गाममें रक़्साँ है, मौतका-सा जमूद

....

नज़रकी गोदमें अश्कोंकी आग जलती है,
है सुबहे-नौकी यह आमद कि धूप ढलती है,

... .

सुना तो यह था कि तक़्दीरे-आशियाँ चमकी
गया वह दौरे-ख़िज़ाँ बज़्मे-गुलसिताँ चमकी

.. . .

मगर जो ग़ौरसे देखा निगाहे-बीनामें
तो काँप-काँप उठे ज़िन्दगीके काशाने

... .

दिलोंमें डूबके उभरी हैं, दर्दकी फाँसें
क़दम-क़दमपै यह मदफ़न नज़ार-नज़ार लाशें

....

'नासिर' मालीगाँवी—

आज़ादीके वाद

[१९ मैंसे ४]

मिली है, वारे-ख़ुदाया यह कैसी आज़ादी ?
कि ज़र्रा-ज़र्रा है हिन्दोस्ताँका फरियादी
समझ रहे थे मसाइबसे अब मिलेगी नजात
मगर नसीवमें लिखी हुई थी वरवादी
हम अपने दिलकी हक़ीक़त भी कह नहीं सकते
इसीका नाम है, फ़िक्रो-नज़रकी आज़ादी
दरिन्दगीकी भी हदसे गुज़र गया इन्साँ
बड़ा अजीव है, यह इन्क़लावे-आज़ादी

—शाइर अप्रैल १९४८

शफ़ीक़ ज्वालापुरी—

यास

उम्र हर्गी ख्वावकी उफ़ ऐसी भयानक तावीर
जैसे भूचालमे गिरजाए कोई रंग महल
टूट जाये कोई फरती लवे-साहिल आकर

—शाइर दिस० १९५१

किस-किसका लहू सर्फ़े-बहारों नहीं होता
साहिलसे तो अन्दाज़-ए-तूफ़ाँ नहीं होता

अफ़कारका[1] शीराज़ा परेशाँ नहीं होता

यह दौरे-तग़य्युर[2] तेरा महकूम[3] नहीं है,
यह राज़[4] अभी तक तुझे मालूम नहीं है,
मसरूफ़[5] है, जो आँख वोह मग़मूम[6] नहीं है,
उज़राओंकी[7] तकलीफ़[8] तो मालूम नहीं है,

इन्साँ है कोई पैकरे-मासूम नहीं है,

.. . .

माया है अगर कलका तेरे क़ल्बे-हज़ींपर[9]
कुछ ख़ूने-जिगरसे भी खिला फूल ज़मींपर
महनतका अर्क़[10] आये अगर तेरी जबींपर[11]
मौक़ूफ़[12] नहीं तेरी चुनाँ और चुनींपर
है फ़ाश[13] वोह इक रिन्दे-ख़राबात नशींपर

बेदार[14] है जो ज़हन वोह मायूस[15] नहीं है

—आजकल अगस्त १९५४

---

१ चिन्ताओंका समूह; २. शान्तियुग, ३ आधीन; ४. भेद, बात; ५ व्यस्त, ६ ग़मगीन, रंजीदा; ७ कुंआरी लड़कियाँ, हज़रत मरियमका लक़ब, ८ उलझनें; ९. ग़मगीन दिलपर, १० पसीना, ११. मस्तकपर; १२ आधारित; १३ प्रकट, १४. जागा हुआ; १५. निराश ।

अबुल मजाहिद 'ज़ाहिद'—

साक़ी

निज़ामे-नौमें यह तेरी अजब बेदाद है, साक़ी !
जो प्यासे हैं, उन्हींके हक़में तू जल्लाद है साक़ी !

शराबे-नौ पै भी क़ब्ज़ा है, ज़रीं-जाम वालोंका !
ग़रीबोंके लबोंपर आज भी फ़रियाद है, साक़ी !

वही मै दूसरोंकी और वही ग़ैरोंके पैमाने !
यह धोका है, कि अपना मैकदा आज़ाद है साक़ी

अब उसको भी हमारी वज़ए-रिन्दाना नहीं भाती !
वह मैख़ाना हमारे दमसे जो आबाद है साक़ी !

ज़रा कतराके चल ईमाँ-शिकन तहज़ीबे-हाज़िरसे
यह जन्नत तो है, लेकिन जन्नते-शद्दाद है, साक़ी !

चमन वाले करें अपनी तबाहीका गिला किससे
यहाँ तो भेसमें मालीके हर सैयाद है साक़ी !

तेरे मैख़ानेसे उठकर दिले 'ज़ाहिद' पै क्या गुज़री
न पूछ इसको बहुत ही दु:ख भरी रूदाद है साक़ी !

—शाइर अगस्त १९५१

मुल्कमें नाफ़िज़[1] हुआ इस तरह जमहूरी निज़ाम[2]
जैसे क़ैदे-जिस्ममें रूहे-रवाँ[3] आज़ाद है,

इम्तयाज़े-लालओ-गुल[4] है न फ़र्क़े-ख़ारो-ख़स[5]
सायए - अब्रे - बहारे - गुलसिताँ आज़ाद है,

गुरुदवारेपर,[6] कलीसापर[7], हरमपर[8], दैरपर[9]
चाहे जिस मंज़िलपै ठहरे कारवाँ आज़ाद है,

ल्हाइने-आज़ादीसे

१४ में-से ६

हाँ बता जहदे-मईश्‍तमें[10] इस आज़ादीसे क़ब्ल ?
सर[11] किये हैं, तूने कितने मार्का हाए-नबर्द[12]
रुक गये है अब तेरे क्या कारोबारे-ख़ानगी[13] ?
पड़ चुका है आज क्या तेरा सियह बाज़ार सर्द[14]

बाज़िए-दौलतमें क्या पडता नहीं अब तेरा दाव
क्या बिसाते-ज़रपै[15] अब रक़्साँ[16] नहीं है तेरी नर्द[17]
क्या तेरी चाँदीका चाँद अब पड़ गया पहलेसे माँद
क्या तेरे सोनेका सूरज हो गया है आज ज़र्द

---

१. जारी, २ प्रजातन्त्र-शासन; ३. आत्मा; ४. न लाला और फूलोंमे अन्तर है, ५. न काँटे-घासमे, ६. गुरु द्वारा; ७. गिरजाघर, ८. मस्जिदपर, ९. मन्दिरपर; १०. आर्थिक सकट क्षेत्रमे, ११. विजय, १२. युद्ध; १३. व्यक्तिगत व्यापार; १४. काला बाजार ठण्डा पड गया है; १५. धनकी बिसातपर; १६. नृत्य करती हुई; १७. गोट।

प्रोफ़ेसर आगासादिक़—

मुनकिराने-सुबह

विजलीको असीरे-दाम[1] कहनेवालो !
किरनोंको स्याह फ़ाम[2] कहनेवालो !
तग़ाफ़ुले-हक़ायक़[3] तो ज़वाले-फ़न[4] है
रोज़े-रोशनको[5] शाम कहने वालो!

रअ़ना जग्गी—

मुनकिराने-बहार[6]

हर यक़ींको गुमाँ समझते हैं,
आगको भी धुआँ समझते हैं,
हैं कुछ ऐसे भी लोग जो ज़िदसे
फ़स्ले-गुलको ख़िज़ाँ समझते हैं,
जल्वए-सुबहको[7] इक इशवए-शब[8] कहते हैं,
ना-समझ लोग करमको[9] भी ग़ज़ब कहते हैं,
एक शीशा भी नहीं, जिनकी मताए-हस्ती[10]
वह भी अब ख़ुदको ख़रीदारे-हलब[11] कहते हैं,
जिनके एहसासपै ग़ालिब है फ़नाके असरात[12]
जाविदाँ शैको भी वह जान-तलब[13] कहते हैं,

१. जालमें फँसी हुई; २. काली, ३. वास्तविकताको झुठलाना; ४ कलाका पतन; ५. प्रकाशको; ६. बहारोंके विद्रोही; ७. प्रातःकालीन शोभाको, ८. रात्रिका चमत्कार; ९ मेहर्बानीको १०. जिनके पास पीनेको एक गिलास नहीं, ११. रूमके एक शहरका नाम; १२. जिनकी भावनाओं-पर मृत्यु-भय छाया हुआ है; १३. अमरत्व प्रदान करनेवाली वस्तुको भी घातक समझते हैं।

जोत जलेगी
कितने ही तूफ़ाँ गुज़रे हैं
कितने ही तूफ़ाँ गुज़रेंगे
लाख उठेंगे सुर्ख़ बगोले
दम-दम बढ़ता हुआ अँधेरा
जोत मगर यह बुझ न सकेगी
जोत जली जल्ती ही रहेगी
बैरी लाख जतन कर देखें
इस जोतीके हम रखवाले
इसे बुझाये किसकी हिम्मत ?
दिन बीतेंगे जुग बदलेंगे
जोत जलेगी
जोत जलेगी

गोपाल मित्तल—

आते ही ख़िज़ाँ-मौसमे-गुल कुछ चाक गरेबाँ होते हैं,
बरसों आहिस्ता-आहिस्ता नासूरे-बहाराँ होते हैं
इन्सानो-नग़मे जिस्माती मगर फ़ज़ूँ नहीं होता है,
जब बरसों मातम आ पहुँचे तिनके भी फ़ुग़ाँ होते हैं,

मासूम हसीनोंकी यह हँसती हुई मेहनत
नौख़ेज़ जवानोंमें मशक़्क़तकी रक़ाबत[1]

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

बातोंसे नहीं हाथोंसे होता है यहाँ काम
इस दौरमें होनेका है बातोंसे कहाँ काम

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

तू क़िस्रे-हवाईके[2] बनानेका है मुश्ताक़[3]
यह गाँवोंके हालात बदलनेके हैं मुश्ताक़

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

है तेरी ग़रज़ रोज़ नये फ़ित्ने उठाना
यह चाहते है गाँवको गुलज़ार बनाना

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

है जल्से-जलूसोंमें तेरे दिनोंका तसर्रुफ़[4]
यह महवे-मशागल[5] है, तो तू महवे-तअस्सुफ़[6]

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

सरशारे-वतन[7] यह है, कि तू, मुझको बता दे
मेमारे-वतन[8] यह है कि तू मुझको बता दे

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

---

१. नये उठते हुए किशोरोंमें श्रम करनेकी परस्पर प्रतियोगित
२. हवाई महल, ३. इच्छुक। ४. व्यय; ५. कार्य-व्यस्त, ६. रंज
अफ़सोस करनेका आदी, ७. अपने देशपर प्रसन्न, मस्त; ८. देश निर्मा

विश्वनाथ 'दर्द'

लाख तूफ़ान उठें लाख बगोले रोकें !
हमको पहुँचाएगा मंज़िलपर जनूने-कामिल
हुस्ने-फरदाके हमीं बाग दिखाने वाले
आजकी बात करो कलमें भला क्या हासिल
आज दावा है उन्हें वक़्तकी नब्बाज़ीका
जा रहे वक़्तकी रफ्तारसे कलतक ग़ाफ़िल

—आज़ादीका अदब

'यही' आजमी—

काश्मीरपर पाकिस्तानका अधिकार साबित करनेके लिए सुहरावर्दी और नूनने जिस अक्तूबरमें विषैले भाषण दिये, उसी अक्तूबरमें 'यही' आजमीकी यह नज़्म छपी—

ऐ जन्नते काश्मीर

१४ बन्दमें-से २

काश्मीरके सौन्दर्य—प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन करते हुए फ़र्माते हैं—

> है रब्त[1] हमेशासे हमें तेरे चमनसे
> तेरे गुलो-रेहाँसे[2] तेरे सरू[3]-ओ-समनसे[4]
> सदियोंका तअल्लुक है, तेरा कोहो-दमनसे[5]
> है निस्बते-देरीना[6] तुझे गंगो-जमनसे
>
> वाबस्ता[7] वतनसे है, अज़लसे[8] तेरी तकदीर
>
> ऐ जन्नते—कश्मीर

अनन्त कालसे जिस वतनके साथ काश्मीरका भाग्य सम्बन्धित है। वह वतन कौन सा है, इसका स्पष्टीकरण सुनिए—

---

१. अभ्यास, सम्बन्ध, २ फूलों और हरियालीसे, ३. सरोवृक्ष, ४. चमेलीके फूलोंसे, ५ पर्वतोंसे; ६. पुराना सम्बन्ध; ७. जुड़ी हुई, ८. सृष्टिके प्रारम्भसे।

मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन
मेरे वतनकी सरज़मीं जमीलो-दिलकशो-हसीं
मेरे वतनका आसमाँ अज़ीमो-ट ज़्म आफ़रीं
यह पुर ख़लूस बस्तियाँ फलाहो-ख़ैरकी अमीं
सकूँ पसन्दो-सुल्हजू बुलन्दज़र्फ़ो-पाकबीं
यह ज़रफ़शाँ खेतियाँ, सितारह ख़ेज़ोबुरजबीं
शगूफ़, बारोगुल्चुकाँ, नज़र नवाज़ो-नाज़नीं
रवाँ-दवाँ हैं चारसू, फ़िज़ामें रूहे-अंगबीं
म ज़ाक़े-दीद चाहिए, तजल्लियाँ कहाँ नहीं
मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन

मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन
यह साधुओंकी जन्मभूमि, सूफ़ियोंका यह वतन
तमद्दुनोंका मदरसा सक़ाफ़तों की अंजुमन
यह सब्ज़पोश वादियाँ, यह हरीफ़ख़ल्क़-ए-ख़ुतन
यह चश्म-हाए-जाँ फ़िज़ाँ, यह गंग और यह जमन
कहीं शहार मुजनरब, कहीं शराब मौजज़न
लताफ़तें रविश-रविश, नफ़ासतें चमन-चमन
यह दिलबराने शोख-रू सहर जमालो-सीमतन
इशारतें अदा-अदा, इबारतें सुख़न-सुख़न
मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो कायनाते-मन

मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन
यह अम्नका पयाम्बर यह आश्तीका देवता
मुआफ़कतका राहबर, ममाहल्तका रहनुमॉं
यह बेबसोंका ख़ैरख़्वाह, बेकसोंका हमनवा
रफ़ीक़े- अहले - यूरपो-अनीसे - ऑल-एशिया
उठा तो लेके दावते - निशाते-ख़ुर्रमी उठा
बढ़ा तो बहरे-इन्तज़ामे-सुल्ह-ओ-दोस्ती बढ़ा
मिला तो सबसे आजिज़ी-ओ-इंकसारीसे मिला
रहा तो सबमें होके सरफ़राज़ो-सुर्ख़रू रहा
मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन

मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन
यह फ़लसफ़ेका आस्ताँ, हरीमे-दानिशो-ख़बर
यह ज्ञानियोंका आश्रम, यह आरफ़ाने-हक़का घर
कहीं पै इज्तमाए-शब, कहींपै महफ़िले-सहर
मिलावतें नफ़स-नफ़स, इबादतें नज़र-नज़र
जुनूँ यहाँका मुहतरिम, ख़िरद यहाँकी मुतक़दर
यहाँकी ख़ाके-राह भी है 'तैश' ! कीमिया असर
यह बाग़ो-बन, यह बहरो-बर यह काख़क़ यह दश्तोदर
यह लाल ज़ारे बेकराँ यह एक ख़ुल्द मुख़्तसिर
मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन

—आजकल, अक्तूबर १९५

यह छावनी छाती हुई परबतपै घटाएँ
यह झूमती गाती हुई धरतीकी फ़ज़ाएँ
बहकी हुई, लटकी हुई, यह मस्त हवाएँ,
किस शाइरे-फ़ितरतकी तू ख़्वाबोंकी है ताबीर ?
ऐ जन्नते-कश्मीर !

सदियों तू रहीने-ग़मे-दौरॉं[1] भी रहा है,
यह तेरा चमन बर्क़ बदामॉं[2] भी रहा है,
यह ख़ुल्दे-बशर, दोज़ख़े-इन्सॉं भी रहा है,
फूलोंमें तेरे थी कभी शोलोंकी भी तासीर
ऐ जन्नते कश्मीर !

ऐ जन्नते-कश्मीर ! मुझे फिर वही डर है
इक शोला-ख़ू अफ़रीतकी[3] फिर तुझपै नज़र है,
फिर तेरी बहारोंमें वही रक़्से-शरर[4] है,
बन जाये न फिर तेगे-खिज़ॉंका कहीं नख़चीर[5]
ऐ जन्नते-कश्मीर !

---

१ दु:ख-सन्तप्त, २. आफतोंसे घिरा; ३. आग लगानेवाले भूत की; ४. चिंगारियों का नृत्य, ५. उजाडरूपी तलवारका घाव ।

शहज़ोर काशमीरी

इन्तख़ाब

ऐ मेरे दिलकी रानी ! तू रूहे-ज़िन्दगी है,
साहबाए-दिलबरीकी इक मौजे-बेख़ुदी है
जज़्बाते-आशिक़ीकी रंगीन शाइरी है,

दिल चाहता है तुझको आँखोंसे मैं लगाऊँ
और तेरे नाज़ उठाऊँ ?

लेकिन वतनपै मेरे इफ़लास है मुसल्लत
मिल्लतपै कमतरीका एहसास है मुसल्लत
यानी फ़िज़ाए-दिल पर, इक यास है, मुसल्लत,

अदबारे-क़ौमपर अब मैं अश्के-ग़म बहाऊँ
या तेरे नाज़ उठाऊँ ?

.. ..

लेकिन ठहर कि लाखों बेवाएँ रो रही है,
और दाग़े-बेकसीको अश्कोंसे धो रही है,
यानी वोह ज़िन्दगीसे बेज़ार हो रही है,

इस वक़्त जाके उनके आँसू मैं पूछ आऊँ
या तेरे नाज़ उठाऊँ ?

.. ..

मेरे अश्क क्यों उठायें तेरे दामनोंके एहसाँ
अभी अपना पैरहन[१] है, अभी अपनी आस्तीं है,
मेरे ज़ौक़े-जुस्तजूको[२] है तुझीको शर्म रखना
मेरे साथ बेख़ुदी है कोई कारवाँ नहीं है,
मेरी ज़िन्दगी चमन है मैं चमनकी ज़िन्दगी हूँ
मुझे फ़िक्रे-गुलसिताँ है ग़मे-आशियाँ नहीं है।

—आजकल सितम्बर १९५६

●

१. वस्त्र; २. तलाशके शौक़को।

वफ़ूरे-जोशे-जुनूँकी[1] जभी है बात कि हम
फ़राज़दारसे[2] इज़्मे-अ़मलकी[3] बात करें
हयाते-नौका[4] तक़ाज़ा भी है, शही 'मंशा'
हम आफ़तोंमें भी ताबो-तवाँकी[5] बात करें

—आजकल नवम्बर १९५४

सग़ीर अहमद सूफ़ी—

क्यों सई-ए-नामे-अन्जाममें[6] दिन-रात गुज़ारो
अब जाम[7] उठाओ ग़मे-ऐयामको[8] मारो
मुमकिन है, यही दर्द, मदावाए-अलम[9] हो
क्यों, चारागरे-दर्दे-मुहब्बतको[10] पुकारो
इस मेम्बरो-महराबमें[11] इक उम्र गँवाई
वाइज़ ! कभी मैख़ानेमें इक शाम गुज़ारो

—आजकल सितम्बर १९५४

सिकन्दरअली 'वज्द'—

मुसकाओ ख़ुशीकी बात करो
रोनेवाले हँसीकी बात करो

---

१. उत्साह लगनकी अधिकताकी, २-३. केवल कर्तव्यकी बातें न बनायें, कर्तव्य पालें। ४. नवयुगका सन्देश; ५. हिम्मत, सब्रोकरारकी, सहनशीलताकी। ६. मुसीबतोंके परिणामोंकी चिन्तामें; ७. मदिरा पान (कदम बढाओ); ८. दुर्दिनोंरे; ९. दुःखका इलाज, १०. प्रेम-व्यथाके चिकित्सकको, ११. मस्जिदो और भाषणोंमें।

सुना था कि 'नाहीद' शाद आ गई
मेरे-नग़्मे 'ज़ुहरा' भी नग़मा गई
न दिल न मुहब्बत कोई गीत में
मगर सहमा डूबा हुआ सोग में
नहीं उनकी महफ़िलमें मदहे-मस्दे
वह फन जिसमें फ़ारे-अर्ज़की गुनूदे
यह उन्सी है ज़ुल्फ़ोंकी है नार्में
यह गौहरे हैं ग़ल्तीदा किस ख़ाकमें
निगाहोंके बिस्मिल अदाओंके सैद
यह सूरज है अपनी ही किरनोंमें बन्द

.. ..

नज़रमें अँधेरा इरादों पै ज़ाग
दबी-सी दिले-मुज़्तरबमें उमंग
निगाहोंमें बेचारगी ख़ुमार[10]
तफ़क्कुरमें[11] छाया हुआ इक ग़ुबार[12]
जबीनोंपै यासो-जुनूँकी शिकन[13]
उजाले पे तीरगशबी[14] ख़न्दाज़न[15]

.. ..

१. लीन होने वाला आकर्षण, २. कला, हुनर; ३. संसारको सरलता मिले; ४. पेचो ख़ममें, ५. मोती, ६. फँसे हुए-पड़े हुए; ७. शिकार, ८. तड़पते हुए दिलमें, ९ अकर्मण्यता, असहाय स्थितिका १०. नशेका उतार; ११. सोचनेमें, चिन्तनमें, १२ गर्दा; १३. माथो पै; निराशा, उन्मादके बल, १४. अँधेरी रात, १५. व्यग्य हँसी, हँसती हुई।

अब वर्क़से[1] भी तेज़ ज़मानेकी चाल है,
जो रुक गया यहाँ पै वही पायमाल[2] है,
यह कहके "ज़िन्दगीको समझना महाल[3] है"
"आलम तमाम हल्क़ये-दामे-ख़याल[4] है"
सागरमें भरके ख़ूने-जिगर मुसकराइए
माँगे जो मौत उसको भी जीना सिखाइए

इशरतका ज़िन्दगीमें न हो शाइबा[5] कहीं,
और हो ज़बाँपै ज़मज़म-ए-जामे-अंगबीं[6]
दिल शादमाँ हो लबपै हो इक आहे-आतशीं[7]
फ़नमें ख़ुलूसे-क़ल्ब नहीं है तो कुछ नहीं[8]
अल्फ़ाज़के तिलस्मसे हमको बचाइए
जो दिलपै बीत जाए वही लबपै लाइए

---

१. बिजलीसे, २. बर्बाद, ३. कठिन; ४. यह ग़ालिबका मिसरा उद्धृत किया गया है, जिसका भाव यह है, कि यह समस्त संसार कल्पनाओंका जाल है; ५. भोग-विलास जीवनमें लेशमात्र प्राप्त नहीं हुआ; ६. किन्तु शाइरकी ज़बाँपर शराबो शहदके नग़मे थिरक रहे हैं; ७. अथवा जो शाइर भोग विलासमें डूबे रहे, ग़ज़लकी परम्पराके अनुसार उन्होंने भी दुःख व्यथा की शाइरीकी; ८. जो शाइरी अनुभूत नहीं, वह शाइरी व्यर्थ है।

कब तक शफ़क़[1], शगूफ़े[2], शबिस्ताँ[3] शराबे-नाब[4],
कब तक बहारो-बुलबुले-गुल, बरबतो-रुबाब[5]
कब तक 'ख़रामे-साक़ी'[6]-ओ 'ज़ौक़े-सदा'[7] के ख़्वाब
वह देखिए उफ़क़में[8] उभरता है, आफ़ताब[9]
अब खुल्दसे[10] निकलके ज़मींपर भी आइए,
आईनये-हयात[11] अदबको[12] बनाइए,

मुद्दतसे लिख रहे हैं, सरापा-ए-दिलरुबा[13]
अब तक मगर तआरुफ़े-जानाँ[14] न हो सका
सूरतमें रश्के-हूर, दहनका[15] नहीं पता
सीरत जफ़ा शआर[16], सितमपेशा[17] कजअदा[18]
अब यह नक़ाब चहरए-ज़ेबा उठाइए
इन्सान बनके देखिए इन्साँ बनाइए,

१. उषा; २ फूल, उपवन; ३. शयनागार; अन्तःपुर; ४. मदिरा; ५. वाद्य, ६. प्रेयसीकी चाल, ७. मधुर आवाज़के, ८. आकाशमें; ९. सूर्य; १०. जन्नतसे, ११ जीवन-दर्पण, १२. साहित्यको; १३. नख शिख-वर्णन; १४. फिर भी प्रेयसीसे परिचय न हो सका, १५. प्रेयसीके नख-शिखका बयान करते हुए कहा जाता है कि उसके सौन्दर्यसे देवाङ्गनाओंको भी ईर्ष्या होती है। मगर जब मुखाकृतिका वर्णन होता है, तो कहा जाता है कि उसके दहन और कमर इतने सूक्ष्म हैं, कि दिखाई नहीं देते; १६-१७-१८ माशूक़को अत्याचारी स्वभाववाला, ज़ालिम और बाँका तिरछा भी बताया जाता है।

अब ऐ अदब नवाज़[1]! फ़सानेके दिन गये
पीकर, शराब रङ्गसमें[2] आनेके दिन गये
कहता है वक्त, सोने-सुलानेके दिन गये
अपना जनाज़ा आप उठानेके दिन गये
ऐसावको[3] झिंझोड़िए, दिलको जगाइए
ख़ूने-जिगर शराबके बदले पिलाइए

वह शेर चाहिए जो हो तफ़सीरे-क़ायनात[4]
तनक़ीदे ज़िन्दगी[5] होतो ताबीरे-क़ायनात[6]
एक-एक लफ़्ज़ जिसका हो तक़दीरे-क़ायनात[7]
बढ़ जाये जिससे और भी तनवीरे-क़ायनात[8]
इस तरहसे उरूसे-सुख़नको[9] सजाइए
जब देखिए तो एक नया रंग पाइए

—आजकल मई १९५४

---

१. साहित्य-सेवी; २. थिरकनेके, ३. इन्द्रियोंको; ४. जीवन भाष्य, ५. जीवन-आलोचना, ६. ससारका भविष्य बताने वाली; ७. संसारका भाग्यनिर्माण करने वाला, ८. विश्वकी रौनक, चमक; ९. शाइरी रूपी दुल्हनको।

'फ़ज़ा' इब्न फ़ैज़ी—

नक़्शे-दौराँ

मैंने सन्दल[1]-सी जबीनोंको[2] भी देखा है, मलूल[3]
मैंने देखी है हसीं ज़ुल्फ़ों पै इफ़्लास[4] की धूल
मैंने कुम्हलाये हुए, देखे हैं, आरिज़के[5] गुलाब
नज़र आये हैं, मुझे ज़र्द[6] यतीमोंके[7] शबाब[8]
मैंने देखी है ज़मीरोंमें[9] गुनाहोंकी[10] ख़राश[11]
ये कफ़न मुझको नज़र आई है इन्सानकी लाश
मैंने तहज़ीबो-सक़ाफ़तका[12] फ़सूँ[13] देखा है
मैंने पैमानोंमें[14] अक़वामका[15] ख़ूँ देखा है
मैंने देखा है कलीसाओंको[16] सिज्दे[17] करते
क़तरए-आबको[18] देखा है तलातुम[19] करते
मैंने देखा है, हक़ीक़तको[20] सराबोंमें[21] असीर[22]
है मेरे सामने बेपर्दा मज़ाहबके[23] ज़मीर
मेरी आँखोंमें उतारे हैं ग़िज़ाले भी जमील[24]
मैंने देखा है गुलो-लालाकी फ़ितरतको अलील[25]

१. चन्दन-सा, २. मस्तकों; ३. उदासीन, ४. गरीबी, ५. कपोलोंके; ६. पीले; ७. अनाथोंके, ८. यौवन; ९. दिलोंमें, १०. अपराधों; ११. घाव; १२. सभ्यता; १३. जादू; १४. मद्यपात्रोंमें; १५. जनता, १६. गिरजाघरों (मज़हबी इबादतगाहों) को; १७. सिजदे, १८. पानीकी बूँदें, १९. बाढ़, २०, २१–२२. सत्यको मृगमरीचिकामें क़ैद; २३. मज़हबोंके नग्न दिल, २४. सुन्दर, २५. रोगी।

मैंने चहरों पे यहाँ मौतके ग़ाज़े[1] देखे
शाह फ़ारूक़की दौलतके जनाज़े देखे
मैंने ईरानमें देखा है, मुसद्दक़का मआल[2]
मैंने हर बद्रको[3] बनते हुए देखा है, हिलाल[4]
मैंने देखे हैं, छुपे कितने लिबासोंमें जुज़ाम[5]
मुझको शहरोंमें नज़र आये हैं ख़ुशपोश ग़ुलाम
ख़ूने-नादारको[6] बनते हुए देखा है, शराब
मैंने नासूरोंपे[7] देखे हैं, इमारतके नक़ाब[8]
अक़्लके[9] रूपमें बेदादके[10] बुत[11] देखे हैं,
मैंने यह खेल तमद्दुनके[12] बहुत खेले हैं

—निगार मई १९५४

'सआदत' नज़ीर—

कभी तीसरी जंग होने न दें हम

३० मेंसे ६ शेर

मेरे साथ आओ, मेरे साथ आओ!
किसानोंके जत्थेको भी साथ लाओ!
सफ़े स्याह इन्सांकी हिम्मत बढ़ाओ!!
लड़ाईके शोलोंको मिलकर बुझादो!
ग़ुलामाने-ज़रको जहाँसे मिटादो!

१. पाउडर, २. दान; ३. पूर्णिमाके चाँदको; ४. द्वितीयाका चाँद; ५. कोढ़, ६. ग़रीबके ख़ूनको, ७. वह ज़ख़्म जो कभी भरा न जा सके; सदैव रिसता रहे, ८. पर्दे; तह, ९. स्वप्न, कल्पनाएँ; १०. अत्याचारके; ११. मूर्ति, १२. संस्कृति, सभ्यताके।

यह शोले वतनमें भड़कने न पायें!
मुनासिब यही है, कि उनको दबायें!!
कभी तीसरी जंग होने न दें हम!
उसे रोक देनेको आगे बढ़ें हम!!
इटामिक अनर्जीको बरबाद कर दें।
ज़मानेको इस ग़मसे आज़ाद कर दें!!

—शाइर सितम्बर १९५१

अरशद फ़हमी अज़ीमाबादी—

सपनोंका महल

धूलमें लोटती दोशीज़गी खिल उठेगी
और रोटीके लिए, अब न बिकेगी इस्मत
ग़मका एहसास मसर्रतमें बदल जायेगा
ज़ेरे-लब हूँ नज़र आयेगी ख़ुशीकी जन्नत

फिर मेरे ख़्वाबोंकी तामीर ग़लत निकली है,
सुन रहा हूँ अभी मजरूह दिलोंकी आहें
बेकसी आज भी रोटीके लिए बिकती है,
बन्द हैं, आज भी सब अम्नो-अमाँ की राहें,

शाख़े-गुलमें हैं, अभी लिपटे हुए मारे-सियाह
अपने माहौलसे भी रूठ गया हूँ ऐ दोस्त!
ज़र्रा-ज़र्रा मेरे एहसासमें जाग उठा है,
अपने सपनोंका महल टूट गया है, ऐ दोस्त!

—शाइर दिसम्बर १९५१

'निसार' इटावी—

वही हक़दार है, किनारोंके
जो बदल दें बहाव धारों के
दोशे-हर शाखे-गुल पै लाशा है,
क्या यही रंग है बहारोंके ?
ऐ अमीराने-कारवाँ हुशयार
कोई पर्देमें है, गुबारोंके

—शाइर नवम्बर १९५१

'फ़जा' इब्न फ़ैजी—

आदमी बनो

ऐ कायनाते आदमो-हव्वाके वारिसो !
मेरे हरम नशीनो, मेरे सोमनातियो !
तीरा-जमीरो ! कमनज़रो, पस्त हिम्मतो !
दूँ ज़र्फो ! हरज: कोशो ! ग़लत बीनो ! कजरवो !
सोज़े-रूहसे महरूम पैकरो !

पशमीना-पोशो ! खिरका-बदोशो ! लँगोटियो !
कुम्हलाये फूलो ! ख़ूँशुदा कलियो ! खिजाँज़दो !
सुलगे दरख़्तो ! झुलसे बनो ! सूखी टहनियों !
ऐ शोर ज़ारो ! जुहल्के गुनजान जंगलो !
नोकीले काँटों ! सूखी बबूलोंकी झाड़ियो !
असियान्के थपेड़ो ! तबाहीकी आँधियो !

ऐ जुल्मके सतूनो ! हलाकतकी सीढ़ियो !
तज़वीरके मिनारो ! सख़ावतके गुम्बिदो !
ऐ मलजईके महलो ! रज़ालतकी कोठियो !

गहनाये-माहताबो ! अँधेरी उजालियो !
ज़ुल्मत फ़िशाँ सवेरो ! सियह फ़ाम सूरजो !
ऐ ज़ंगखुरदः आइनो ! फ़जल्ये गौहरो !

मुज़्लम मिनारो ! तीरः शुआओंके काफ़िलो !

दहके तनूरो ! गर्म शरारोंके ख़िरमनो !
बिजलीकी लहरो ! आतिशो-आहनकी मनज़लो !
दीवाने कुत्तो ! मस्तो-ग़ज़ब नाक अज़दहो !
ऐ मुर्दाख़ोर कर्गसो ! ख़ूँख़ार भेड़ियो !

सल्तनतके बन्दो ! दौलतो-ज़रके पुजारियो !
ओबाशो ! शोर-पुश्तो ! मंसेरे मदारियो !
मुर्दा-फ़रोशो ! इस्मतो-ईमाँके ताजरो !
ज़रके गुलामो ! शामतो ! पेंदेलो ! फ़ाजिरो !

ऐ नसलके मुर्दो ! गुनहगार नफ़्सियो !
बदरूसियो ! शरीफ़ कमीनो ! कबाड़ियो !
सदियोंकी आलमगीर ग्यासतके हामियो !
मुर्दा दिलोंके ! झूठे इमामो ! फ़रेबियो !

क़म्मारबाज़ो ! मसख़रो ! नक़्क़ालो सोफ़ियो !
अफ़्यूनख़ोरो ! भंगड़ो ! पागल शराबियो !
बनमानसो ! उक़ाबो ! लकड़बग्घो ! गीदड़ो !
इन्सानियतके क़ातिलो ! ख़ूँख़्वार वहशियो !

ऐ ग़फ़लतोंके लुक़मो ! तआस्सुबके ईंधनो !
ऐ नफ़रतो नफ़ाक़के मज़बूत बन्धनो !
ख़िरमेकी सूखी गुठलियो ! बेमाया कंकरो !
मकड़ीके जालो ! बहरके कमज़ोर बुलबुलो !

ऐ मौतके फ़रिश्तो ! हलाकतके क़ासिदो !
चंगेज़के भतीजो ! हलाकूके साथियो !
ऐ होशयार गिद्धो ! पढ़े लिक्खे जाहिलो !
फ़नकारो-सरकशीके ! समझदार अहमको !

ऐ भटके देवताओ ! रसूलो ! पयम्बरो !
ऐ झूठे ऋषियो ! रास्ता भूले मुसाफ़िरो !

ऐ शूद्रो ! मलकशो ! अछूतो ! हरीजनो !
ऐ वैश्यो ! और क्षत्रियो ! ऐ बरहमनो !
सद्दीक़ियो ! क़ुरैशो ! अफ़ग़ानो ! सैयदो !
ऐ रास्तबाज़ झूटो ! निरे अहमको सुनो !

सब कुछ तो बन चुके हो ज़रा आदमी बनो
सतहे-ज़मींपै नक़्शे-नरे-ज़िन्दगी बनो
मंशा हयाते-वक़्तका भूले हुए हो तुम
मुट्ठीमें आफ़ताब लिये सो रहे हो तुम

—शाइर अगस्त १९५१

प्रो० शम्स शैदाई सहसवानी—

अँधेरी दुनिया

है इन्सानोंकी मजबूरियोंकी कहानी
यह मिट्टीमें मिलती हुई नौजवानी
वोह कीमत नहीं जिसकी कौनों-मकाँ भी
है, पानीसे अरज़ाँ वही ज़िन्दगानी
जवानी मगर खेलती है लहूसे
लहूमें शराबकी है, शोला-फ़िशानी
सिरदने बुझादी मुहब्बतकी मशअल
हविसकी दिलोंपर हुई हुक्मरानी
अँधेरेमें इन्सान हैराँ-ओ-मुज़्तर
न कुछ काम आई मगर नुक्तादानी

—निगार मई १९४५

'क़मर' हाशिमी—

ज़ाविये

भटक रहे हैं अभी कारवाँ गर्दिशोंके
लरज़ रही है अभी आस्मानो-अंजुमकी
तरस रहे हैं ग़रीबोंके दिल हज़ारों दिल
अभी रसोंको इत्मीनान नहीं तबस्सुमकी

अभी तो ज़ुल्मतें छाई हुई है गुलशनपर
अभी तो ख़ार भी फूलोंपै मुसकराते हैं
अभी चमन है, ख़राबे-जहाने-रंगो-बू
अभी तो महरका ज़र्रे भी मुँह चिढ़ाते है

—एशिया फ़रवरी १९४६

—

ग़ाविद हश्मी—

सवेरे सवेरे

ग़रीबोंकी कुटिया हो या क़िसरे-शाही
यहाँ भी धुँदलके वहाँ भी अँधेरे
यह दुनिया है याँ चैन लेने न देंगे
समाजी दरिन्दे रिवाजी लुटेरे

गुज़रने भी दे ये ग़ुबारे-मुनज़्ज़िम
निकलने भी दे ये मुसलसल अँधेरे
बड़े देर से मुन्तज़िर है हमारे
गुलाबी उजाले शहाबी सवेरे

चल अपने लिये अब नई राह ढूँढें
करें क्या लिहाज़ो-रिवाजे ज़माना
यह दुनियाकी रस्मे न तुझसे न मुझसे
यह दुनियाके बन्धन न तेरे न मेरे

—एशिया फरवरी १९४६

ग़ुलाम रब्बानी ताबाँ

दीवाली

....

मगर यह रातकी गरदनमें दीप मालाएँ,
सियाहियोंमें उजालेके बदनुमा धब्बे,
गरीब हब्शीको जैसे ज़ुकाम हो जाये,
वह टिमटिमाते दिये ....
यह टिमटिमाते दिये सुबहका बदल तो नहीं

.. ..

यह टिमटिमाते दिये लच्छमीके चरनोंमें
सभीने हुस्ने-अक़ीदतके फूल डाले हैं,
वे, जिनको लक्ष्मीदेवीसे ग़र्ज़-ख़ास नहीं
घरोंमें अपने भी दीपक जलाये बैठे हैं,
कि इस तरफ़ भी इनायतकी इक नज़र हो जाय
मगर ये भूले हैं ....
शकिस्ता झोंपड़ियों टूटे-फूटे खण्डहरोंमें
कभी भी लच्छमीदेवी न मुसकरायेगी
कभी बहार ना उनके चमनमें आयेगी
अगर ये ख़ुद ही निज़ामे-चमन न बदलेंगे
सियासियोंके नुमाइन्दे बनके बैठे
हमारे फ़िक्रो-नज़रेमुल्कको बाँधनेके लिए
तोहम्मातकी ज़ंजीर डाल देते हैं
कभी दिवाली, कभी शबे-रात आती है

—दुनिया अख़बार १९४१

शफीक जौनपुरी—

पतदाल

ताकत हो तो मल्हूज़ रहे हुस्ने-नज़र भी
फ़ौलादके बाज़ू हों तो चहरा गुलेतर भी
शेराना गरज़ चाहिए आवाज़में, लेकिन-
कुछ दर्द भी हो, सोज़ भी हो, क़ैफ़ो-असर भी
हिम्मत है जलानेकी, बुझाना भी तो सीखो
पानी भी हो, शबनम भी हो, शोला भी, शरर भी
मग़रूरकी महफ़िल हो तो मसनदको भी ठुकराओ
मज़दूरका मजमा हो तो हो शीरो-शकर भी
टूटे हुए दिल जोड़ दे अख़लाक हो ऐसा
टकराये तो फिर तोड़ दे बातिलकी कमर भी
बन्द आँखें हों ता-अर्शे-बरीं देख रहा हो
गाफ़िल हो .खुद अपनेसे ज़मानेकी ख़बर भी
सज्दा करे तो ख़ाकके ज़र्रोंपै जबीं हो
ले हाथमें परचम तो झुकें शम्सो-क़मर भी
हल्क़ेमें लिये फिरते हों मग़रिबके गुल अन्दाम
दामनकी क़सम खाती हो हूरोंकी नज़र भी
हो तेग-बकफ़ शोरिशे-अरबाबे-जफ़ापर
मज़लूमकी फ़रियादपै बा-दीदए-तर भी

—निगार सितम्बर १९४८

'शफी' जावेद—

वातका रूप

जीवनकी फुलवारीमें जब आशाओंके फूल खिले।
मनकी बगिया महक उठी और प्रेमके पग-पग दीप जले ॥
चन्दाके उजियारेमें भी डगर-डगर अँधियारा है
नगर-नगर डाकू फिरते हैं, मनमोहनका स्वाँग भरे
प्रीतकी रीत निराली है, दिल रोता है, लब मिलते हैं,
नीर बहे तो आँखें फूटें, आह करें तो सीस कटे
आँसू शबनमका हो, या आँखोंका, रहने पाता नहीं
मिट ही जाता है धरती पर जब सूरजकी जोत जगे
चुप भी रहो 'जावेद' कहाँ तक बातका रूप निखारोगे।
जानके मोती रोलके जगमें कोई कहाँ तक सूखे मरे ॥

—आजकल अक्तूबर १९५१

साहिर लुधियानवी—

१५ अगस्त

मनचलानोंके दरवाजोंपे नये पट्ट चुके होंगे
मजालिस नए चुन चुके होंगे, अखबारें नई छप चुके होंगे
नई रस्में, नये प्रतिनिधि, नया मस्नद, नया झंडा
अनूठे-सारङ्गोंकी सादगी-तासीर-सी होगा

सुलगते वलवले सीनोंसे आजायेंगे आँचलपर
बहुत कुछ सर्द जो जायेगा बज़्मे-ख़ासका मंज़र
चितायें मुसकरायेंगी मक़ाबिर गीत गायेंगे
यह ख़्वाबगाहे गराँ-ख़्वाबी चटक कर टूट जायेंगे
मलाइककी जबीनें आदमीके पाँव चूमेंगी
हयातो-मौत दोनों एक ही महवरपै घूमेंगी
न ख़ौफ़े रहज़नी होगा, न ज़ोमे रहबरी होगा
बहुत शफ़्फ़ाफ़ लोगोंका मज़ाक़े-रहरवी होगा
वोह आज़ादीका आलम मुतलक़न जन्नतनुमाँ होगा
फलक़ अपने फलक़ होंगे ख़ुदा अपना ख़ुदा होगा

—शाइर फ़रवरी १९४८

अहमद नदीम कासिमी—

नया साल

हज़ार बार नये सालका नया सूरज
लुटा चुका है शुआएँ महल सराओं पर
मगर बुझा-सा अभी तक है झोंपड़ोंका दिया
चिमट रही है सियाही ग़रीबख़ानों पर
मैं सोचता हूँ नये सालकी नई यह शराब
कहीं न जाममें ज़ार ही के ढलके रह जाये
और इस शराबके बदले निरास आँखोंमें-
हिरमाँ-यासका आँसू उबलके रह जाये

आवद' सर हिन्दी—

शख़्सी हुकूमत जागीरदारी,
यह भी शिकारी, वह भी शिकारी,
शेख़ो-बिरहमन दस्तो-गिरेबाँ
फ़ैज़े - सियासत हर सिम्त जारी
क़ैदे-गुलामी रंज़े-दवामी
जीना भी मुश्किल मरना भी भारी
इन्सानियतका है, फ़क़त अब भी
गो बढ़ गई है, मर्दुमशुमारी
मज़हबने करके तक़सीमे-इन्सॉं
दोज़ख बना दी दुनिया हमारी
अक़वामे - आलम लड़ती रहेंगी
बाक़ी है, जब तक सरमायेदारी
सज्दोंमें तेरे क्या ख़ाक असर हो
दिलमें नहीं है ईमानदारी

—शाहर जनवरी १९४८

गोपाल मित्तल—

सुर्ख़ आँधी

फिर ही आयेगी ज़ुल्मते-ज़ालिम
मशअ़ले - इल्म जगमगायेंगी
हमने देखे हैं सैकड़ों तूफ़ाँ
सुर्ख़ आँधी भी छट ही जायेगी

बशीर 'बद्र'—

अज़्म

हाँ मेरे फ़र्ज़से मुझको मेरी महबूब न रोक
अभी देना है नई सुबहका पैग़ाम मुझे
पूँछले सरमगीं आँखोसे छलकते आँसू
यह तेरे अश्क न करदें कहीं बदनाम मुझे
ऐसे पाकीज़ा अज़ाइमपै यह मातम कैसा
मुसकराहटकी ज़रूरत है, बहरगाम मुझे

....

ज़हने-ईन्सानीको पैहम जो डसे जाते,
ख़त्म करने हैं, ख़ुदाओंके वह ओहाम मुझे,
जो ग़रीबोंके लहू पीके हुए सर-ब-फ़लक
वही ढाने है, शहंशाहोंके अहराम मुझे
मुफ़लिसोंकी नई दुनियाको बनानेके लिए
किले-शाहीके गिराने है, दरो-बाम मुझे
अब यह अफ़सुर्दा हसीं चेहरे लहक उट्ठेंगे
अब तो लानी है नई सुबह, नई शाम, मुझे

....

मेरे एहसासमें जागी है, बग़ावतकी तड़प
दे बग़ावतका मेरी आज तू इनआम मुझे
हाँ मेरे फ़र्ज़से मुझको मेरी महबूब न रोक
अभी देना है, नई सुबहका पैग़ाम मुझे

●

बज़्मे-अदब

बज़्मे-अदबके[1] इस सालाना जल्सेमें शिरकत फर्मानेके लिए हिन्दोस्तान और पाकिस्तानके हर अक़ीदे[2], हर खयाल और हर उम्रके शुअ़रा तशरीफ़ लाये हैं। बज़्मे अदबकी यह खुशकिस्मती है कि बग़ैर किसी भेद भावके मुतज़ाद खयालात[3] रखते हुए सभी हजरात पहलू-ब पहलू घुले मिले बैठे हुए बड़े छोटे सब मुहब्बतो-इखलासके साथ महवे-गुफ्तगू[4] हैं। यहाँ दौरे-जदीदके[5] तरक्क़ीपसन्द[6], ग़ैर तरक्क़ीपसन्द, इन्क़लाबी[7], वतनपरस्त, दौरे-माज़ीके मौतक़िद[8], कम्युनिस्ट, कॉंग्रेसी, मुस्लिमलीगी वग़ैरह सभी क़िस्मके शुअ़रा जल्वा फर्मा[9] हैं। कुछ बुज़ुर्ग हजरात उस्तादीका मर्तबा रखते हैं, कुछ साहब साहिबे दीवान हैं। कुछ नौजवान शुअ़रा आस्माने-शाइरीपर चमक रहे हैं, तो चन्द ऐसे गुञ्चे भी हैं जो बहुत जल्द गुलशने अदबकी जीनत बननेवाले हैं। वह ज़माना लद गया जब शुरूमें छोटे और बादमें बड़े शाइर पढते थे। आज हस्बमामूल मुशाअ़रा जारी रहेगा। हो सकता है उस्तादके बाद शागिर्दके पढनेका नम्बर आ जाये।

लीजिए मुशाअ़रा शुरू हो रहा है। 'पसन्द अपनी अपनी समझ अपनी-अपनी' के मुताबिक़ किसीके कलामसे आप लुत्फ़अन्दोज़[10] होंगे, किसीपर चीं-ब जबीं[11] होंगे। मगर दौरे-जदीदकी शाइरीने क्या मोड लिया है, उसके लबो लहजेमें क्या तब्दीलियाँ हुई हैं, वह कहाँसे कहाँ पहुँच रही है, यह समझनेकी भी तक्लीफ़ गवारा कीजिए। ज़रूरत महसूस हुई तो किसी दूसरे जल्सेमें हम भी रोशनी डालनेकी कोशिश करेंगे।
२८ मार्च १९५८]

१. साहित्यिक समारोह, २. विश्वासके, ३. भिन्न भिन्न विचारवाले, ४. वार्तालापमें मग्न, ५. वर्तमान युगके, ६. प्रगतिशील, ७. परिवर्तनवादी, ८. पुरातनवादी, ९. विराजमान, १०. प्रफुल्लित, ११. त्योरियाँ चढाएँगे।

'अंजुम' आज़मी

मिलता नहीं सकून तो मिट जाइए मगर,
छुपकर अब इज़्तराबमें रोया न कीजिए ॥
हो जाइए जलील ख़ुद अपनी निगाहमें।
इतना कभी दमाग़को ऊँचा न कीजिए ॥

—आजकल मार्च १९५२

'अंजुम' फ़ौक़ी बदायूनी

महसूसात

तुम्हारे नाज़ किसी औरसे तो क्या उठते
ख़ता मुआफ़ यह पापड़ हमींने बेले हैं

—शाइर मार्च-अप्रैल १९४८

सफ़रकी राहमें ऐसा भी इक हंगाम[1] आता है,
जहाँ रहबर[2] नहीं ऐ दोस्त! रहज़न[3] काम आता है
जहाने-रंगो-बूमें फूल भी मिलते हैं, काँटे भी
मसला[4] इस बातका है, कौन किसके काम आता है?

तुमने फूलोंको नवाज़ा,[5] मैंने काँटोंको चुना
ग़ालिबन दोनों-ही थे ना-आश्ना[6] अंजामसे

---

१. समय, वक़्त, दौर, २. पथ-प्रदर्शक, ३. मार्गमें लूटनेवाला, ४. बात, ५. सम्मानित, आदृत, ६. अनभिज्ञ।

तबाह किसने किया, अहले-ग़मपै क्या गुज़री ?
जो सुन सको तो सुनायें कि हमपै क्या गुज़री ?
किसीकी अंजुमने-नाज तक[1] चले तो गये
फिर इसके बाद न पूछो कि हम पै क्या गुज़री

आप क्यों इस अदासे हों बदनाम
ग़ैर क्या कम है, मुसकरानेको

दिलको तोड़ा है, तो साजे-ज़िन्दगी भी फूँक दो
हो सके तो इतनी ज़हमत[2] और भी मेरे लिए

जल्वए-हुस्नसे[3] रोशन न हुई बज़्मे-हयात[4]
इसलिए ख़ून जलाया गया परवानेका

छलका था मेरे वास्ते पैमानए-जमाल[5]
थोड़ा-सा कैफ़ चाँद सितारे भी पा गये

यह कौन-सा मुक़ामे-तलब है ? कि तुम बग़ैर
पहिले तो कुछ मलाल था, अब कोई ग़म नहीं

वोह मेरे वास्ते आँसू बहायें
कहीं सचमुच यह दिन भी आ न जायें
नहीं तख़सीस[6] महफ़िलमें किसीकी
मगर ताकीद है, 'अंजुमन' न आयें

१ प्रेयसीकी महफिल, २. तकलीफ, ३. सौन्दर्य-प्रकाशसे, ४. जीवन-सभा, ५. सौन्दर्यका मदिरा-पात्र, ६. रोक-टोक।

यक़ीनन कोई राज़ है, इसमें 'अंजुम' !
जो उनकी तरफ़ आप कम देखते हैं

अब उस मुक़ामे-तवज्जहपै है तगाफ़ुले-दोस्त
ज़रूरतन भी जहाँ कोई लब हिला न सके

मेरी सूरतमें कोई और सही मैं न सही
अपनी तसवीरमें तुमने भी किसीको देखा ?

वफ़ाएँ तो अज़लसे ख़ाना-ज़ादे-इश्क़ थीं लेकिन—
बहारोंके लिए शाख़े-नशेमन छोड़ दी मैंने

जहाने-रंगो-बूमें जाने किस शैकी ज़रूरत हो—
गुहले-दिलसे पहिले इक ख़लिश भी माँग ली हमने

यह समझके मुझे बेगाना समझने वाले
लाला-ओ-गुल ही नहीं ख़ार भी काम आते हैं

इश्क़का आलम क्या कहिए
जैसे कोई नींदमें हो

—निगार मई १९५४

'अंजुम' रूमानी

होते हैं बड़े क़िस्मतके धनी जो दर्द समझके मर जाते हैं
तूफ़ाने-हवादिसमें यसा अच्छे अच्छे बह जाते हैं

आँखों-आँखोंकी छेड़ थी लेकिन—
सिलसिला दिलसे मिल गया दिलका
तुझको आना पड़े न मजबूरन
इम्तिहाँ कर न ज़ज़्बए - दिलका
मुश्किलोंसे हिरास क्या मानी
सामना कर हरेक मुश्किलका

—शाइर जून १९५१

तमन्नामें, उदासीमें, खुशीमें, गममें गुज़री है।
हयाते-इश्क़[1] हरदम इक नये आलममें गुज़री है॥

नहीं मिन्नत-कशे-तस्कीं-बयाँ रूदादे-दिल[2] अपनी।
किसीसे क्या कहें जो कुछ किसीके गममें गुज़री है॥

तरीक़े-ज़िन्दगीके पेचो-ख़म हमसे कोई पूछे।
कि हर साइत[3] हमारी काविशे-पैहम[4] में गुज़री है॥

ख़िज़ाँका रंज ही कैसा, गिला है फ़स्ले-गुलसे भी।
कि हमपर इक नई उफ़्तादे[5] हर मौसममें गुज़री है॥

निशातो-ऐश[6] ही को हम समझलें ज़िन्दगी क्योंकर?
है आख़िर ज़िन्दगी वह भी जो रंजो गममें गुज़री है॥

—निगार मार्च १९५२

१. प्रेमकी ज़िन्दगी, २. हृदयके हालके लिए तसल्ली और सान्त्वनाकी तलाश करती नहीं, ३. घड़ी, पल, ४. लगातार परेशानियोंमें, ५. दुर्घटना, ६. भोग विलास।

जोशे-दिल वक़्तके धारेको बदल सकता है,
आदमी ग़मके तलातुममें[1] निकल सकता है
जज़्बे-उल्फ़तकी[2] क़सम, सोज़े-मुहब्बतकी[3] क़सम
हुस्न भी इश्क़के अन्दाज़में ढल सकता है,
आफ़त ऐसी नहीं कोई जो मुसल्लत[4] ही रहे
शौक़ महकम[5] हो तो तूफ़ान भी टल सकता है
अज़्मे-रासिख़की[6] ज़रूरत है, रहे-हस्तीमें[7]
ठोकरें खाके भी इन्सान सम्हल सकता है,
पाए-हिम्मतको[8] जो हो जाय ज़रा-सी लग़ज़िश[9]
हाथसे गौहरे-मक़्सूद[10] निकल सकता है,
अक़्ल पर है, उसी ग़ायतसे जुनूँको तरजीह[11]
वक़्त आ जाये तो काँटोंपे भी चल सकता है,
अम्ने-आलमसे है, आलमकी हयात-अफ़रोज़ी[12]
नूरसे नूरका चश्मा ही उबल सकता है,
मंज़िले-मक़्सदे-जावेद नहीं मिल सकती[13]
काम ताक़तसे निकलनेको निकल सकता है,

---

१ भँवरसे, २. प्रेम भावनाकी, ३. प्रेमाग्निकी, ४. स्थायी, अधिकार किये रहे, ५. मजबूत इरादा, ६. दृढ उद्देश्य, पक्के विचारोंकी, ७. जीवन-पथमें, ८. हिम्मतके क़दमोंमें, ९. कम्पन, १०. अभिलषित वस्तु, ११. अक्लसे दीवानेपनकी श्रेष्ठता इसीलिए प्राप्त है कि वह वक्त पड़ने पर काँटोंमें भी चला जा सकता है। अक्लकी तरह सोचमें नहीं पड़ता। १२. युद्धोंसे रहित संसारकी शान्तिसे ही विश्वमें शान्ति रह सकती है। क्योंकि दीपक-से दीपक जलाया जाता है, १३. वास्तविक उद्देश्यका स्थायी केन्द्र प्राप्त नहीं हो सकता—भले ही बल प्रयोगसे क्षणिक काम बना लिया जाय।

राज़े-मैख़ानए-हस्ती तो समझ लूँ 'अकरम'!
दौर सागरका मेरे हक़में भी चल सकता[1] है!

—आजकल मई १९५१

किसीकी यादने ली दिलमें अँगड़ाई तो क्या होगा
छलक उट्ठा अगर जामे-शकेबाई[2] तो क्या होगा
अभी तो बिजलियोंका है, असर मेरे नशेमन तक
ख़ुदा ना-करदा[3] गुलशन पर भी आँच आई तो क्या होगा
हुजूमे-शौक़े[4]-आदाबे-वफ़ा[5] तूफ़ाँ क़यामत[6] है,
खुली उनपर जो दिलकी ना-शकेबाई[7] तो क्या होगा
तग़ाफ़ुलपर[8] मेरे दिलका यह आलम है मुहब्बतमें
कहीं उसने निगाहे-लुत्फ़ फ़र्माई तो क्या होगा
सुनाना चाहता हूँ क़िस्सए-ग़म उनको मैं लेकिन—
ज़ियादा[9] कहते-कहते आँख भर आई तो क्या होगा

छुपा रक्खा है, अपने आपको तुमने मगर 'अकरम'!
जो कोई दिन हक़ीक़त सामने आई तो क्या होगा

—निगार अगस्त १९५४

१. अगर मयख़ानाका अन्तरंग समझ लिया जाए तो फिर सागरका दौर अपने हक़में भी चलेगा। २. संतोषरूपी पात्र, मद-पात्र, ३. भगवान् न करे, ४. प्रेम करनेकी कल्पनाएँ इच्छाएँ, ५. अनन्तसमाहार, नख़रोंका तूफ़ान, ६. अनेकों पैमाना है, ७. बेसब्री, ८. उपेक्षा पर, ९. ज़्यादा।

सुकूँ - आमेज़[1] है कितना ग़मे-इन्सानियत 'अकरम'
निशाते-दर्द - मन्दीको[2] - कोई पूछे मेरे दिलमे

—निगार मार्च १९५७

तेरे इक जामसे होगा न दर्दे-ज़ीस्त ऐ साकी !
मेरे हिस्सेमें आया है ज़माने भरका ग़म साकी !
भुला देती है सब कुछ लज़्ज़ते-सहबाए-ग़म साक़ी !
यहाँ पैदा नहीं होता सवाले-कैफ़ो-कम साक़ी !

—निगार मार्च १९५८

मआले-आर्ज़ू[3] जो कुछ भी हो लेकिन यह क्या कम है,
निगाहे-शौक़ने आज उनसे दिलकी बात कह डाली
बहार आते ही खुद अहले चमनने जिस तरह लूटा
ख़िज़ाँने की न होगी इस तरह गुलशनकी पामाली

अर्सेमे होश खो बैठा दिले वहशत असर 'अकरम'
अभी छायेंगी गुलशनपर घटाएँ और मतवाली

मुद्दआ ये है मेरी शम-ए-तमन्ना गुल न हो,
अब समझमें आपका दामन बचाना आ गया

१ चैन देनेवाला, २. परदु:ख कातरताकी भावनारूपी सुख
३. अभिलाषाओंका परिणाम ।

'अख़्तर'—अख़्तरअली तिलहरी

बातोंपे मेरी हँसना, है तू वाइज़े-नादाँ[1]!
हो जैसे तेरे पास हक़ीक़तके क़बाले[2]
तज़हीक[3] है, तक़फ़ीर[4] है अरबाबो[5]-ख़िरदकी
हैं, तेरी शरीअतके[6] यह अन्दाज़ निराले

मज़हब तो बहुत ख़ूब है, लेकिन वाइज़!
मज़हबे-जिन्दगीसे[7] तेरी आजिज़[8] हैं ख़िरदमन्द[9]
बेसूद[10] मुबाहस[11] है, तेरे दीनका हासिल[12]
तक़फ़ीरपे अरबाबे-नज़रकी है तू ख़ुरसन्द[13]

सज्दाहाए-बे-रियाके[14] बाद बा-सोज़ो-गुदाज़[15]
यह दुआ करते थे रात इक वाइज़े-मिम्बर नशीं[16]
"मुझको दुनिया कर अता[17] दुनिया, कर्मसे ज़ुल्म-पर्सान
रहने दे तू अपनी हूरें[18], अपना फ़िरदौसे-बरीं[19]"

१. मूर्ख व्याख्यान दाता, २. सच्चाईके प्रमाण-पत्र, दस्तावेज़, सनद। ३. बदनामी, मज़ाक़ उड़ाना, ४. काफ़िर बनाना, ५. बुद्धिमानोंकी (विद्वान्‌से-विद्वान्‌को अधार्मिक कह देना, उसका मज़ाक़ उड़ाना) ६. धर्मविस्तार, मज़हबके, ७. धार्मिक आचरण (दशा) ८. परेशान, रूठे हुए, ९. बुद्धिमान्, १०. व्यर्थ, ११. बहस करना, १२. मज़हबका उद्देश्य, १३. अन्य मनुष्यको अधार्मिक सिद्ध करनेमें तू प्रसन्न होता है, १४. नमाज़में हृदय कपट रहित मस्तक झुकानेके बाद, १५. करुण आवाज़में १६. मस्जिदके व्याख्यान मंचपर, १७. प्रदान, १८. बहुतसी परियाँ, १९. बहिश्त।

यह गुलिस्ताँ - आफरी[1] चेहरे, यह गेसू दिल-नवाज़[2]
यह लिये आँखोंमें मैख़ाने बुताने-हिन्दो-चीं[3]
आजकी इशरतको[4] छोड़ूँ कलकी इशरतके लिए
मेर मौला मुझसे यह मुमकिन नहीं, मुमकिन नहीं"

—निगार दिसम्बर १९५४

नज़र नहीं है हक़ीक़त - निगर, तेरी वर्ना
बहारमें है वह क्या रंग जो ख़िज़ाँमें नहीं,
यूँ सुन रहा हूँ बर्क़ो - नशेमनकी दास्ताँ
जैसे चमनमें कोई मेरा आशियाँ नहीं,

—निगार जून १९५७

'अख़्तर 'अलीअख़्तर

कोई और तर्ज़े-सितम सोचिए।
दिल अब ख़ूगरे-इम्तिहाँ[5] हो गया॥

मेरी मज़लूम[6] चुपपर शादमानीका[7] गुमाँ क्यों हो
कि नाउम्मीदियोंके ज़ख्मको बहना नहीं आता॥

तुझमें हयातो-मौतका[8] मसअला हल अगर न हो।
ज़हरे-ग़मे-हयात पी मौतका इन्तिज़ार कर॥

कब हुई आहको तौफ़ीक़े-करम[9]।
आह! जब ताक़ते-फरियाद नहीं॥

१. पुष्प जैसा मुख, २. दिल मोहक ज़ुल्फें, ३. हिन्द चीनकी नशीली आँखोंवाली सुन्दरियाँ, ४. सुखको, ५. परीक्षाका अभ्यस्त, ६. अत्याचार पीड़ित, ७. प्रसन्नताका, ८. जीवन-मृत्युका, ९. कृपा-करनेकी सामर्थ्य।

ज़हमते-इल्तफ़ात[1] की, आपने आह ! क्या किया ?
अब वोह ल्ताफ़तें कहाँ हसरते-इन्तज़ारमें ॥

करवटें लेती है फूलोंमें शराब।
हमसे इस फ़स्लमें तौबा होगी ?

मेरी बलाको हो, जाती हुई बहारका ग़म।
बहुत लुटाई है ऐसी जवानियाँ मैंने ॥
मुझीको पर्दए-हस्तीमें दे रहा है फरेब ।
वोह हुस्न जिसको किया जल्वा आफ़रीं मैंने ॥

नहीं ऐ हमनफस ! बेवजह मेरी गिरयासामानी[2] ।
नज़र अब वाकिफ़े-राज़े-तबस्सुम[3] होती जाती है ॥

मेरी बेख़ुदी है उन आँखोंका सदक़ा ।
छल्कती है जिनसे शराबे-मुहब्बत ॥
उलट जायें सब अक़्लो-इरफ़ाँकी बहसें ।
उठा दूँ अभी गर नक़ावे-मुहब्बत ॥

—निगार जनवरी १६४१

'अजहर' कादरी एम० ए०

वेगाना वार ऐसे वह गुज़रे क़रीबसे,
जैसे कि उनको मुझसे कोई वास्ता नहीं,

—बीसवीं सदी फरवरी १६५६

१. कृपा करनेकी तक्लीफ़ उठाई, २. रुदन, ३. मुसकानके भेद से परिचित ।

'अजहर' रिजवी

मेरे शेर

है यह आहें मेरी जवानीकी
जहरमें बुझे हुए नश्तर
है मेरे गमकी मुख्तलिफ़ शक्लें
यह मेरे दिलके दाग है, 'अज़हर'

बेज़ारगी

ज़िन्दगीकी "मसर्रतें"—तौबा !
और दिलको जलाये जाती हैं,
सो गईं थकके सब तमन्नाएँ
हसरतें जान खाये जाती है,

आर्ज़ू-ए-हयात

दिलके ज़ख्मोंसे खेल लो 'अज़हर' !
अभी कुछ और रात बाक़ी है,
जिन्दगी ख़त्म हो चुकी, लेकिन—
आर्ज़ू-ए-हयात बाक़ी है,

ख़लिश

एक छोटा-सा अब्रका टुकड़ा
चाँदको अपनी गोदमें लेता
रातको देखकर ख़ुदा जाने
क्यों मेरे दिलमें दर्द होने लगा ?

—आजकल १ अगस्त १९४६

'अजीज' वारसी

तेरी तलाशमें निकले है आज दीवाने ।
कहाँ सहर हो, कहाँ शाम यह ख़ुदा जाने
हरम हमींसे, हमींसे है आज बुतख़ाने ।
यह और बात है दुनिया हमें न पहचाने ॥

'अतहर' हापुडी

यह सनम खाना है, काबा तो नहीं है, ज़ाहिद !
तुझको आना था यहाँ साहबे-ईमाँ होकर,

अदीब-माली गाँवी

उस जाने-बहारॉने जबसे मुँह फेर लिया है गुलशनसे ।
शाख़ोने लचकना छोड दिया, गुञ्चे भी चटकना भूल गये ॥

मज़ाक़े-गमेदिल नहीं हर किसीमें ।
बहुत फ़र्क़ है, आदमी-आदमीमें ॥

वही सलूक मेरे दिलसे तुम भी क्यो न करो ।
चमनके साथ जो फ़स्ले-बहार करती है ॥

तुम मेरी बात बनानेका इरादा तो करो ।
इसके आगे मेरी तक़दीर बने या न बने ॥

हुस्न फूलोंका है बाक़ी तो नशेमन लाखों ।
चार तिनकोंका तो ऐ बर्क़ ! चमन नाम नहीं ॥

मुआमलाते-जवानी न पूछ ऐ हमदम !
लुटा सकून तो हासिल हुआ क़रार मुझे ॥

मुझपै जो कुछ पड़ी, पड़ी, तुमने जो कुछ किया, किया।
तुमको मलाल हो तो हो, मुझको ख़याल भी नहीं॥
अपना अदा शनास बन, अपना जमाल भी तो देख।
तुझमें कमी है कौन-सी, तुझमें कोई कमी नहीं॥

मुहब्बतको अभी, फ़ुर्सत नहीं, अपने नज़ारोंसे।
लिये बैठी रहे बज़्मे-दो आलम दिलकशी अपनी॥

बिजलियाँ है कि मेरा हुस्ने-ख़याल।
कुछ उजाला है आशियानेपर॥

अभी आस टूटी नहीं है ख़ुशीकी।
अभी ग़म उठानेको जी चाहता है॥
तबस्सुम हो जिसमें नई ज़िन्दगीका।
वोह आँसू बहानेको जी चाहता है॥

ग़मेदिल अब इतना भी बढ़ता न जाये।
वोह देखें मुझे और देखा न जाये॥

दरिन्दोंमें हुआ करती हैं, अब सरगोशियाँ इसपर।
कि इन्सानोंसे बढ़कर कोई, ख़ूँ आशाम क्या होगा॥

—शाइर जून १९४६

ख़बर हो कारवाँको मंज़िले-मक़सूदकी क्यों कर?
बजाये रहनुमाई रहज़नी है आम ऐ साक़ी!
वोह हैं मासूम जिनसे अंजुमनका नज़्म बरहम है।
हमींपर किसलिए आता है, हर इल्ज़ाम ऐ साक़ी!

चमनकी रौनक़ें मातमकुनाँ थीं जिनके हाथोंसे।
उन्हींपर मौसमे-गुलका है फ़ैज़े-आम ऐ साक़ी !
लहूने जिनके ईवाने-वतनको रोशनी बख़्शी।
अभी तक उनके घरमें है सवादे-शाम ऐ साक़ी !

—शाइर अप्रैल १९५०

तुम्हें मुबारक हों क़स्रो-ईवाँ, यह ऐशोमस्तीके साज़ो-सामाँ।
है झोपड़ोंसे मुझे मुहब्बत, मैं ग़मके मारोंका साथ दूँगा॥
हज़ारों भूके तड़प रहे हैं, हज़ारों बेकार फिर रहे हैं।
बनूँगा बेकसका मैं सहारा, मैं बेसहारोंका साथ दूँगा॥
न मुझको फूलोंसे दुश्मनी है, न मुझको ख़ारोंसे है अदावत।
जो इख़्तलाफ़े-चमन मिटा दें, मैं उन बहारोंका साथ दूँगा॥

—शाइर अक्टूबर १९५०

'अदीब' सहारनपुरी

न जाना था कि इकदिन पेश यह बातें भी आयेंगी।
सितमके साथ याद उनकी सदा रातें भी आयेंगी॥
शरारे पै-ब-पै उट्ठेंगे इन बेख़्वाब आँखोंसे।
ख़बर क्या थी कुछ ऐसी चाँदनी रातें भी आयेंगी

न काम हौसले आये न वल्वले आये।
रहे-वफ़ामें कुछ ऐसे भी मरहले आये॥
हवासो-होश तो क्या, क़ायनात काँप गई।
कभी-कभी तो दिलोंमें वोह ज़ल्ज़ले आये॥

दिलका यह तक़ाज़ा कि वोह जल्दी गुज़र जायें।
आँखोंकी तमन्ना कि वोह कुछ देर ठहर जायें॥
—निगार अगस्त १९४७

अतायो-जौरके मारे बहुत मिलेंगे मगर।
हमें तबाह किया मुसकरानेवालोंने॥
भुला सके न हम उनको अगर्चे सुनते हैं।
भुला दिया है ख़ुदाको भुलानेवालोंने॥
सकूँ तो ले ही गये थे वोह छीनकर लेकिन—
तड़पने भी न दिया दिल बढ़ानेवालोंने॥
कफ़समें रहके भी हम तो उन्हें न भूल सके।
हमें भी याद किया आशियानेवालोंने ?
इलाजे-दर्दसे कुछ और दर्द बढ़ ही गया।
उन्हींका ज़िक्र किया आने-जानेवालोंने॥
—निगार सितम्बर १९४७

कौन इस तर्ज़े-जफ़ाए-आस्माँकी दाद दे।
बाग सारा फूँक डाला, आशियाँ रहने दिया॥
यह जोशे-बहाराँ, यह घटाएँ यह हवाएँ।
दीवाने न हो जायें अगर, लोग तो मर जायें॥
जितनी हविसकी अंजुमन आराइयाँ बढ़ीं।
उतने ही बाल शीशए हस्तीमें आ गये॥
ख़िरदके शेव-ए-कारआगहीका हाल न पूछ।
जिस आईनेपै जिला की, वही खराब हुआ॥
—निगार अप्रैल १९५२

'अदम'—अब्दुलहमीद

हमसे हँसकर न यूँ ख़िताब करो,
इस तकल्लुफ़से इज्तनाब करो
चाँद तो रोज़ ही निकलता है
आज तख़्लीके-आफ़ताब करो

आज तो अपनी ऑखके सदक़े
पेश इक साग़रे-शराब करो,
मेरी बाहोंमें डालकर बाहें
दुश्मनोंके जिगर कबाब करो,

हेच है दौलतें दो आलमकी
शै कोई ख़ास इन्तख़ाब करो,
मेरी ऑखोंकी तिश्नगी बनकर
सैरे-मैख़ानए-शबाब करो,

फ़ैज़ जारी है हुस्ने-मुतलक़का
ऑखवालो कुछ इक्तसाब करो,
रात काफ़ी गुज़र चुकी है 'अदम' !
अब तो उट्ठो ज़रा-सा ख़्वाब करो,

—शमअ मार्च १९५८

जिन्दगी तो तवील मुद्दत है,
चार पल भी अमर नहीं होते,
इसको परवाज़की न ज़हमत दो,
अक़्लके बालो-पर नहीं होते,
जिन निहालोंकी ख़ू न अच्छी हो
वह कभी बारवर नहीं होते,
तरबियत ज़िन्दगीका जौहर है,
बे-अदब बा-हुनर नहीं होते,
खोल दीजे करमके दरवाज़े
बारगाहोंके दर नहीं होते,
कोहकनको कोई यह समझा दे
मेहनतोंके समर नहीं होते,
जाना उनको भी है उधर ही 'अदम'
पर मेरे हमसफ़र नहीं होते,

—शमअ् मार्च १९५८

अनवर साबरी

कोई सुने-न-सुने इन्क़लाबकी आवाज़ ।
पुकारनेकी हदोंतक तो हम पुकार आये ॥

जहाँ तक गिर्दे-मंज़िल गर्दे मंज़िल भूल जाना है ।
हमें आना है उन पुरपेच राहोंसे गुज़र जाना ॥

इसीका नाम है मअ्राजिए-दिल अहले कूचेमें ।
न आनेकी क़सम खाकर भी आना, मगर जाना ॥

राज़दारे-ख़ुदी हो तो जाये।
हासिले-ज़िन्दगी हो तो जाये॥
अमने-आलम तो मुश्किल नहीं है।
आदमी आदमी हो तो जाये॥

तू मेरे वास्ते एक और जहाँ पैदाकर।
यह जहाँ लग़ज़िशे-आदमके सिवा कुछ भी नहीं॥

'अफ़क़र' मोहानी

मैं क़फ़समें ख़ुद ही सैयाद! अभी आऊँगा पल्टकर।
न मिला अगर चमनमें मुझे मेरा आशियाना॥

'अत्र' एहसनी

ज़मानेमें फिर कौन होता हमारा?
अगर तेरा ग़म भी न देता सहारा॥
यह सहारा वोह मंज़िलका दिलकश नज़ारा।
कहाँ लाके पाए-शकिस्तोंने मारा॥

यह आवाज़ दी दोस्तने या क़ज़ाने?
ज़रा देखना मुझको किसने पुकारा॥
ग़मो-दर्दपर चढ़के क़ब्ज़ा जमा ले।
कि इसपर नहीं मुनअिमोंका इजारा॥

अगर अब भी ज़िल्लतमें गुज़रे तो क़िस्मत।
ख़ुदी भी हमारी ख़ुदा भी हमारा॥

न होते पर तो क्यों मेयाद होता, क्यों क़फ़स होना।
बड़ी दुश्वारियोंके बाद शाख़े-यालो-पर जाना॥
यहींसे पड़ गई बुनियाद 'अन्न' अपनी तबाहीकी।
कि हमने उनके वादोंको हदीसे-मुअ़ल्तबर जाना॥

राहे-उल्फ़तमें अपनी ख़ुद्दारी[1]।
ठोकरें हर क़दम पै खाती हैं॥
ख़मे - अबरूसे - दोस्तके क़ुर्बां[2]।
सरकशी[3] सर यहीं झुकाती है॥
कोई जिसको सुने न दिलके सिवा।
यूँ भी आवाज़ उनकी आती है॥
ग़मसे आते हैं, उनकी महफ़िलमें।
नाव साहिलपै[4] डूबी जाती है॥
मुझको मुख़्तार जानता है जहाँ।
कैसी तुहमत लगाई जाती है॥
नासहोंको यह कौन समझाये।
आशिक़ी आदमी बनाती है॥
हर कली मुसकराके गुलशनमें।
ग़म - ज़दोंकी हँसी उड़ाती है॥
चौंक पड़ता हूँ हर सदा पर यूँ।
जैसे आवाज़ उन्हींकी आती है॥

---

१. स्वाभिमानकी, २. प्रेयसीकी टेढ़ी भवोंको शाबास है, ३. घमण्ड, उद्दण्डता, ४. दरिया किनारे।

इश्क़में जुर्मे - यक तबस्सुमपर[1]।
बेकसी मुद्दतों रुलाती है॥

—आजकल जून १६५४

न होना बज़्मको बेख़ुद बनाकर मुनमईन साक़ी !
अभी हुश्यार हैं कुछ रंगे-महफ़िल देखने वाले॥
सफ़ीना ही तो है,टकरा भी जाता है किनारोंसे।
सरे-साहिल न डूबें ख़्वाबे-साहिल देखनेवाले॥
ज़रा हुशियार रहना है बहुत दुनियाए-शाअिरमें।
तेरे रुख़पै मेरी कैफ़ियते-दिल देखने वाले॥
नज़ाकत वह,जराहत यह,वह मासूमी,यह जल्लादी।
उन्हें हैरतसे तकते हैं, मेरा दिल देखने वाले॥
ज़माना बदगुमाँ, चेहरा परेशाँ,गुलफ़िशाँ दामन।
ख़बर ले पहिले अपनी नब्ज़े-बिस्मिल देखने वाले॥
इन्हीं दिलचस्प मौज़ोंमें सफ़ीने डूब जाते हैं।
मिज़ाजे-बहर क्या समझेंगे साहिल देखने वाले॥
बहर - सू घूमनेवालेको कोई 'अब' समझा दे।
कि तू ही ख़ुद है,मंज़िल सूए-मंज़िल देखने वाले॥

—तहरीक सितम्बर १६५४

हर-इक नज़रमें है रक़्साँ वह मौजे-नूर अब तक।
भुला सका न जहाँ दास्ताने-नूर अब तक॥
जुनूँके[3] हाथमें सब कारोबार सौंप दिया।
बशरको आया न जीनेका भी शऊर अब तक॥

१. एक मुस्कानके अपराधपर, २. घाव, ३. उन्मादके।

ख़बर नहीं तुम्हें देखा था कैसे आलममें ।
उबल रही है निगाहोंसे मौजे-नूर अब तक ॥
चमन ही फूँक दिया मेरे आशियोंके साथ ।
न आया बर्क़को गिरनेका भी शऊर अब तक ॥
मिटाके कालिबे-दौलतमें आ गया फरऊन ।
मचल रहा है, हर ईवानमें ग़रूर अब तक ॥
वही फ़सानए - इन्सानियत दरिन्दोंमें ।
दमाग़े - हज़रते नासेहमें है फ़ितूर अब तक ॥
जो हो सके तो भड़कते दिलोंको ठण्डा कर ।
बहुत बना दिये तेरी नज़रने तूर अब तक ॥
मगर यह नंग है, ऐ 'अब्र' बे-वफ़ाओंमें ।
वफ़ाका दम भरते तो हो तुम ज़रूर अब तक ॥

—तहरीक नवम्बर १९५४

'अम्न' हरिवंशनारायण

उन्हींकी बज़्म सही, यह कहाँका है दस्तूर ?
इधरको देखना, देना उधरको पैमाने ॥

'अयूब'

जो हुस्नो-इश्क़की रूदादसे हैं बेगाने ।
वोह क्या समझके चले आये, मुझको समझाने ?

'अरशद' काकवी

शम-ए-उम्मीद बुझ गई लेकिन—
रोशनी है कि कम नहीं होती ॥

'अर्शी' भोपाली

वह हमसे खफ़ा तो हैं लेकिन, आया न खफ़ा होना भी उन्हें।
एहवाबने उनकी नज़रोंको, सौबार परीशाँ देखा है॥
अब कहिए तो उनसे क्या कहिए, कुछ याद नहीं सब भूल गये।
दामन तो यह कहकर थामा था "कुछ आपसे हमको कहना है"॥
तजदीदे-करम सर आँखोंपर, यह दौलते-ग़म तो मुझसे न ले।
कुछ और सँवरना है मुझको, कुछ और भी मुझको जीना है॥

तजदीदे-आर्ज़ूके लिए दिल मचल न जाय।
मुद्दतके बाद फिर वोह नज़र आ गये हैं आज॥
शायद उन्हें भी रंजिशे-बाहम है नागवार।
मुझसे निगाह मिलते ही घबरा गये हैं आज॥
अब देखिए पहुँचती है बरबादियाँ कहाँ?
उनकी हसीन आँखोंमें अश्क आ गये हैं आज॥

जब कभी दर्दे-मुहब्बतमें कमी पाई है।
अपनी हालतपै मुझे आप हँसी आई है॥
आपके अहदे - करमका भी तसव्वुर है गराँ।
उन मुक़ामातपै अब आपका सौदाई है॥

बरहमीका दौर भी किस दरजा नाज़ुक दौर है।
उनकी बज़्मे-नाजतक जा-जाके लौट आता हूँ मैं॥

हयाते-खुल्द भी 'अर्शी' कहाँ जवाब उनका।
जो उनकी बज़्ममें घड़ियाँ गुज़ार दीं मैंने॥

बेताबिए-दिलके इन नाज़ुक लमहोंका तसव्वुर तो कीजे।
जब अहदे-मुहब्बत होते ही फ़ुरक़तका ज़माना आ जाये ॥

तेरी नीची नज़रकी यादका आलम अरे तौबा।
चुभा कर दिलमें जैसे तोड़ डाले कोई पैकाँको ॥

थरथराते हुए हाथोंसे जाम देता है।
चारागर आज न जाने मुझे क्या देता है॥
कुछ तो होता है हसीनोंको भी एहसासे-जमाल।
और कुछ इश्क़ भी मग़रूर बना देता है॥
दार मिल ही गई मनसूरको 'अर्शी' वरना।
कौन दुनियामें मुहब्बतका सिला देता है॥

आग़ाज़े-आशिक़ीका अल्लाहरे ज़माना।
हर बात बहकी-बहकी हर गाम वालहाना॥
उनके मेरे मरासम थे बेतकल्लुफ़ाना।
ऐसा भी आ चुका है, उल्फ़तमें इक ज़माना॥
सौ बार देखकर भी यूँ मुज़तरब है नज़रें।
जैसे गुज़र गया हो देखे हुए ज़माना॥

—निगार जुलाई १९४९

उनको देखा था अभी, फिर इस तरह बेताब हूँ।
वाक़ई देखे हुए जैसे ज़माना हो गया॥
तानए-एहबाब, दुनियाकी क़यास - आराइयाँ।
इक तेरी ख़ातिर मुझे सब कुछ गवारा हो गया॥

इस्मते-कौनैन उस बरबादे-उल्फ़तपर निसार।
उनके दामनको बचा कर ख़ुद जो रुसवा हो गया॥

उनकी महफ़िलमें भी 'अर्शी' कम नहीं दिलकी तड़प।
यह तबीयतको ख़ुदा जाने मेरी क्या हो गया॥

—निगार सितम्बर १९४९

सोज़े-उल्फ़तसे वोह कम मायए-ग़म है महरूम।
आतिशे-दिलको जो अश्कोंसे बुझा देता है॥

जब उन्हें अर्ज़े-अलमपर मुज़तरिब पाता हूँ मैं।
जो न पीनेके है आँसू, वह भी पी जाता हूँ मैं॥
दिलकी बेताबीके सद्क़े जल्वागाहे - नाज़में।
अब तो अक्सर बेबुलाये भी चला जाता हूँ मै॥
बहकी - बहकी - सी निगाहें, लड़खड़ाये-से क़दम।
हाय ! वोह आलम कि उनके सामने जाता हूँ मैं॥
उनकी आँखोंके तसद्दुक़, उनकी आँखोके निसार।
अब तो 'अर्शी'के लिए अक्सर बहक जाता हूँ मै॥

निगाहे - शौक़से कबतक मुक़ाबिला करते ?
वोह इल्फात न करते तो और क्या करते ?
यह पूछो हुस्नको इल्ज़ाम देनेवालोंसे।
जो वोह सितम भी न करता तो आप क्या करते ?
हमें तो अपनी तबाहीकी दाद भी न मिली।
तेरी नवाज़िशे - बेजाका क्या गिला करते ?

—निगार सितम्बर १९४९

वोह आये सामने लेकिन नज़र मिला न सके ।
मेरी निगाहे - तमन्नाकी ताब ला न सके ॥
रहे - वफ़ाकी कठिन मंज़िलें अरे तौबा ।
वोह थोड़ी दूर भी हमराह मेरे आ न सके ॥
ज़माना कहता है बरबादे - आर्ज़ू मुझको ।
ख़ुदा करे कोई इल्ज़ाम उनपै आ न सके ॥
न जाने टूट पड़ी क्या क़यामतें दिलपर ।
हम आज शिद्दते-ग़ममें भी मुसकरा न सके ॥
तेरी हयाते - सकूँ - आश्नासे क्या हासिल ?
वोह नक़्श छोड़, ज़माना जिसे मिटा न सके ॥
न कहते थे कि है बेसूद उनसे अर्ज़े-अलम ।
जबींपै चन्द सितारे भी झिलमिला न सके ॥
तेरी नवाज़िशे - बेहदका शुक्रिया लेकिन—
वोह क्या करे जिसे क़ुरबत भी रास आ न सके ॥
न पूछ उसकी तबाही जो सामने उनके ।
छुपाये राज़े - अलम और मुसकरा न सके ॥
ग़मे - हयातमें यह सख़्त मरहले तौबा ।
कभी - कभी तो मुझे वोह भी याद आ न सके ॥
किसी तरह उसे जीनेका हक़ नहीं हासिल ।
जो अपने आँसुओंमें ख़ूने-दिल मिला न सके ॥

हमसे और उनमे तर्के - मुलाक़ात हो गई ।
दुनिया जो चाहती थी, वही बात हो गई ॥

यह तमकनत, यह जोम, महवे-वजहे-बरहमी ।
अब कौन उनसे पूछे कि क्या बात हो गई ॥
इज़हारे-ग़मपै और वोह बेगाना हो गये ।
क्या बात हमने सोची थी, क्या बात हो गई ॥
रोज़े-फ़िराक़े-यारकी अल्लाहरे तीरगी ।
यह भी ख़बर नहीं है कि कब रात हो गई ॥
'अर्श' कुछ इस तरहसे हैं ख़ुश उनको देखकर ।
जैसे हर-एक मिन्नतकी मकाफ़ात हो गई ॥

'असग़र' मलीहाबादी

हरबार दिलने एक चोट खाई ।
हरबार टूटी है पारसाई ॥
ख़ाली सुराही, ख़ाली पियाले ।
काली घटा तू बेकार आई ॥
मैनोशियों पर मैनोशियाँ है ।
फिर भी नहीं है, ग़मसे रिहाई ॥

अब शौक गया ऐसे आदाब अमीरोंके ।
मदफ़न-सी बनें जिनमें आराम-ओ-मसर्रत है ॥

नशा भी है मगर अन्देश-ए-गुनाह नहीं ।
घुले हैं, मेरी निगाहोंमें कैसे मैख़ाने ॥

चमनमें बहे हैं शबनमके आँसू ।
कहाँ ज़िन्दगी ही नहीं मुसकराना ॥

—शाइर मई १९५०

उनके जल्वोंका अजब मैंने समाँ देखा है।
इक नये रंगमें देखा है, जहाँ देखा है॥
हुस्ने-मग़रूरका तुम देख चुके इस्तग़ना।
अश्क़ ख़ुद्दार मगर तुमने कहाँ देखा है?
जिस क़दर मुझको ज़मानेने किया है पामाल।
मैंने उतना ही उम्मीदोंको जवाँ देखा है॥
जिससे ऊँचा ही बलन्दीमें नहीं कोई मुक़ाम।
मैंने हिम्मतको वहाँ तेज़ अनाँ देखा है॥
चश्मे-मख़मूरसे जब मुझको किसीने देखा।
मैंने घबराके सुए-बादाकशाँ देखा है॥
दिलको बहलायेगा क्या मौसमे-गुलका मंज़र।
हमने इस मर्तबा वह रंगे-ख़िज़ाँ देखा है॥
क्यों है यह चीं-ब-जबीं हुस्नकी फ़ितरतके ख़िलाफ़।
मैंने हर गुलको 'असर' ख़न्दाँ वहाँ देखा है॥

—तहरीक नवम्बर 1954

हज़ार ऐशकी सुबहें निसार हैं जिनपर।
मेरी हयातमें ऐसी भी इक शबे-ग़म है॥

जल्वे यह मेरी आँखोंमें किसके समा गये?
नज़रें उठीं तो कोनो-मकाँ जगमगा गये॥
अल्लाहरे तसव्वुरे-जानाँकी शोख़ियाँ[1]।
जैसे वह मुसकराते मेरे पास आ गये॥

—तहरीक मई 1955

1. प्रेयसीकी कल्पनाके स्वभावका ध्यान।

मेरे ख़यालकी दुनियामें रोशनी लेकर
तेरे विसालकी ताबीर मुसकराती है

ज़माना चाहिए लेकिन अभी फ़राग़तको
फ़िज़ाएँ रास नहीं दावते-नज़रके लिए
यह ज़िन्दगीका कड़ा दौर है मेरे महबूब !
मैं जानता हूँ कि मुज़तर है, तू 'असर'के लिए
तेरे लिए मै इरादे बदल नहीं सकता
कि ज़िन्दगी है, मेरी ख़िदमते-बशरके लिए

—शाइर जून १९५१

'असर' रामपुरी

जिन्हें जुनूँमें भी रहता है पासे-रुसवाई ।
शऊरमन्दोंसे बेहतर है ऐसे दीवाने ॥

ब-कोशिश जज़बए-उल्फ़त कभी पैदा नहीं होता ।
यह आतिश ख़ुद भड़क उठती है, भड़काई नहीं जाती ॥
हदीसे-इश्क़की तशरीह तुझसे क्या करूँ नासेह !
समझमें ख़ुद तो आ जाती है, समझाई नहीं जाती ॥
न जाने किन हसीं हाथोंने रक्खी है बिना इसकी ।
यह दुनिया लाख बिगड़े इसकी रअनाई नहीं जाती ॥
'असर' मैंने वफ़ाका ज़िक्र जब उनसे किया, बोले—
"सुना तो है कि होती है, मगर पाई नहीं जाती" ॥

—आजकल १ अगस्त १९४९

आग़ा सादिक

अपने उभरे हुए जज़्बातसे बातें की हैं।
रातभर तारों भरी रातसे बातें की हैं॥
ज़िन्दगीके भी क़दम रुक गये चलते-चलते।
यूँ धड़कते हुए लम्हातसे बातें की हैं॥
फ़र्ज़ करता हूँ कि इक बात कही है तूने।
और तसव्वुरमें उसी बातसे बातें की हैं॥
दिलभी क्या चीज़ है बहलाये बहलता ही नहीं।
और तो और ख़यालातमें बातें की हैं॥

—माहे नौ अगस्त १९५१

'आफताब' अकबराबादी

रक़्से-बहार

बहारें रक़्स करती हैं, नज़ारे रक़्स करते हैं।
चमनके फूल, हँसनेसे तुम्हारे रक़्स करते हैं॥
रुखे-रगीनसे जब वह मुसकरा देते हैं गुलशनमें।
भड़क कर आतिशे-गुलके शरारे रक़्स करते हैं॥

जुनूमें मिट गया एहसासे-ज़िल्लतो - ख्वारी ।
ज़रा तो सोचिए क्या होके रह गया हूँ मैं ?

—तहरीक दिसम्बर १९५५

'अहमद' अजीमाबादी

आलमे - इन्तज़ारमें 'अहमद' !
अब किसीका भी इन्तज़ार नहीं ॥

'अनवर'–इफ़्तखार आजिमी

शबे-ग़म[1] मैं तारे लुटाता रहा हूँ ।
मुहब्बतमें आँसू बहाता रहा हूँ ॥
चमनमें नहीं हूँ तो क्या ख़ूने-दिलसे ।
क़फ़समें गुलिस्ताँ बनाता रहा हूँ ॥
हवादिसके[2] इन ख़ारज़ारोंमें[3] हमदम[4] !
गुलोंकी तरह मुसकराता रहा हूँ ॥
मुहब्बतकी तारीकिए-यासमें[5] भी ।
चिराग़े - तमन्ना जलाता रहा हूँ ॥

ख़िज़ाँमें भी अहले-चमनको मैं 'अनवर' !
नवीदे-बहाराँ[6] सुनाता रहा हूँ ॥

—निगार मार्च १९५२

१ दुखःपूर्ण रातोंमें, २. मुसीबतोंके, ३. कण्टकाकीर्ण दुनियामें, ४. मित्र, ५. निराशा, अँधियारोंमें, ६. बहारका सन्देश ।

हिलती नज़र आती है असासे-तौबा[1]।
लरज़ाँ है दिले-क़द्र शनासे-तौबा[2]॥
नादिम[3] मुझे होना ही पड़ेगा 'आबिद'!
बरसातमें दुश्वार है, पासे-तौबा,[4]॥

पीनेको तो फ़िरदौसमें[5] अक्सर पी ली।
अब क्या यह पैमाना कहूँ क्योंकर पी ली॥
रंगीनिए-सहबा[6] है, न जोशे-सहबा।
अफ़सुर्दा दिलीमें[7] मए-कौसर पी ली॥

—तहरीक नवम्बर १९५८

'आलम' मुहम्मद मुस्तफ़

उनके तबस्सुमतका अल्लाहरे करम!
तनहा न एक लमहेको रहने दिया मुझे॥
कुछ लड़खड़ा गये थे क़दम बज़्मे-नाज़में।
उनकी नज़रने उठके सहारा दिया मुझे॥

—आजकल अक्तूबर १९५०

महमूद 'आलम' बस्तवी

गुलशनके दिलफ़रेब नज़ारोंसे पूछ लो।
तुम कितने ख़ूबरू हो बहारोंसे पूछ लो॥
हर शबको रोशनी है तुम्हारे जमालकी।
मेरा न हो यक़ीं तो सितारोंसे पूछ लो॥

१. तौबाकी नींव, [illegible], २. [illegible] [illegible] हिल रहे हैं, ३. [illegible], ४. [illegible] ५. जन्नतमें, ६. [illegible] न [illegible] है न [illegible] है, ७. [illegible]।

तेरी नज़रोंका जो तूफ़ान टकराता है इस दिलसे ।
इसी तूफ़ानकी मौजोंके धारे रक़्स करते हैं ॥
बुझा जाता है दिल, उम्मीद भी अब टूटी जाती है ।
यह आख़िर क्यों शबे-ग़मके सितारे रक़्स करते है ?

किसे एहसास होता है, मुहब्बतकी तबाहीका ।
सफ़ीने डूब जाते है, किनारे रक़्स करते हैं ॥
जहन्नुम भी मनाहें ढूँढ़ती है, 'आफ़ताब' उस वक़्त ।
कि जब सोज़े-मुहब्बतके शरारे रक़्स करते हैं ॥

—'शमअ' फरवरी १९५८

'आबिद' शाहजहाँपुरी

रुबाइयात

इज़हारे-हक़ीक़तके[1] लिए आये थे ।
तब्दीलिए-फ़ितरतके[2] लिए आये थे ॥
ख़ुद हज़रते - वाइज़ भी उठे है पीकर ।
रिन्दोंकी हिदायतके लिए आये थे ॥

यह मंज़रे-पुर - कैफ़ बदल जाने दे ।
मदहोश तबीयतको सँभल जाने दे ॥
वाइज़ तेरा फ़रमान मेरे सर आँखों पर ।
मुमकिन हो तो बरसात निकल जाने दे ॥

१. वास्तविक बात कहनेके, २. स्वभाव परिवर्तनके ।

'इजहार' मलीहाबादी

कभी भूलसे बज़्मे-इश्को-उल्फ़तमें अगर जाना ।
तो पहले ही हदूदे-कुफ़्रो-ईमाँमें गुज़र जाना ॥
किनारेसे किनारा कर लिया 'इज़हारे'-तूफ़ाँमें ।
बड़ी तौहीन थी अपनी, किनारेपर ठहर जाना ॥

'इबरत'

इधर आँख झपकी उधर ढल गई वह ।
जवानी भी एक धूप थी दोपहरकी ॥

'क़तील'

कोई ताबिन्दा किरन यूँ मेरे दिलपर लपकी ।
जैसे सोये हुए मज़लूमपै तलवार उठे ॥
मेरे ग़मख़्वार ! मेरे दोस्त !! तुम्हें क्या मालूम ?
ज़िन्दगी मौतकी मानिन्द गुज़ारी मैंने ॥

'क़दीर'

तमाम उम्र रहे कुफ़्रो-दीसे बेगाने ।
हर-एक राहको हम अपनी रहगुज़र जाने ॥
'क़दीर' अपने ही जल्वोंमें जो हैं बेगाने ।
वह मेरे दिलकी तमन्नाका हाल क्या जाने ॥

'क़मर' जलालवी

मेरी ज़िन्दगी है वो आइना, कई रूप जिसके बदल गये ।
कभी अश्क अन्दलीबों हुआ, कभी जल्वे अश्कमें ढल गये ॥
वह ग़मे-गुरबतकी मंज़िलें, वह ग़मे-मुहब्बतके मरहले ।
कभी आ गये तेरे पास हम, कभी और दूर निकल गये ॥

क्यों आज वे पिये ही बहकने लगा हूँ मैं।
अपनी नज़रके मस्त इशारोंसे पूछ लो॥
होते हैं कितने मुस्तसर ऐय्यामे-लुत्फ़े-दोस्त।
हम बदनसीब हिज्रके मारोंसे पूछ लो॥
क्या-क्या मज़े हैं, कोशिशे-नाकामे ज़ीस्तमें।
'आलम' ग़मे-हयातके मारोंसे पूछ लो॥

—बीसवीं सदी फ़रवरी १९५६

'इक़बाल' सफीपुरी

सब्ज़ा भी, कली भी, ग़ुञ्चे भी, मौसम भी, घटा भी, जाम भी है।
ऐसेमें काश तुम आ जाओ, ऐसेमें तुम्हारा काम भी है॥

'इक़बाल' अज़ीम

सब खोके भी हम कुछ पा न सके, वोह हमसे अलग, हम उनसे अलग।
दुनिया जिसे देखे और हँसे, हम ऐसा तमाशा कर बैठे॥
वोह दर्द नहीं, वोह हूक नहीं, वोह अश्क नहीं, वोह आह नहीं।
गुल करके मुहब्बतके शोले, हम घरमें अँधेरा कर बैठे॥
सावनकी झड़ी, घनघोर घटा, शादाब चमन, शादाब फ़िज़ा।
इन सबका करें हम क्या आख़िर, जब तुम ही किनारा कर बैठे॥
अंजामकी लज़्ज़त याद रही, आग़ाज़की शिद्दत भूल गये।
माहिलके छलावेमें आकर, मौजोंपे भरोसा कर बैठे॥
पहलूमें लिये बैठे हैं वोह दिल, 'इक़बाल' कि मूसा रश्क करे।
जो तूरकी भी ताब आ न सकी, उस बर्कको अपना कर बैठे॥

—आजकल १ सितम्बर १९५५

न वोह सुबह है, न वोह शाम है, न पयाम है न, सलाम है।
तेरी आँख मुझसे जो फिर गई, मेरे सुबहो-शाम बदल गये॥
तू सम्भल-सम्भलके कदम बढ़ा, कि यह राहे-इश्क़ है ऐ 'क़मर'!
जो बिगड़ गये तो बिगड़ गये, जो सम्भल गये तो सम्भल गये॥

—शाइर दिसम्बर १९४७

'क़मर' मुरादाबादी

चन्द बेवक्त ख़यालात लिये बैठा हूँ।
अपने उलझे हुए हालात लिये बैठा हूँ॥
वोह तो मुद्दत हुई बेज़ारे-वफ़ा हो भी चुके।
मैं अभी शुक्रो-शिकायात लिये बैठा हूँ॥

'क़मर' शेरवानी

कभी आशियाँकी तमन्ना मुसलसल।
कभी आशियाँ तक गये, लौट आये॥

कुछ ऐसी भी ख़ुनक रातें रही हैं।
सहर तक बस तेरी बातें रही हैं॥
तुझे देखा नहीं है फिर भी तुझसे।
मेरी अक्सर मुलाक़ातें रही हैं॥

जीनेवालोंको क्या ख़बर इसकी।
मरनेवाले किधरसे गुज़रे हैं॥

गाहे-गाहे तो होशवालोंपर।
हम भी दीवानावार हँसते हैं॥

नबाहियोंका खयाल क्यों है, चमनकी रौनक़ बढ़ाने वालो !
जो बिजलियोंको न आजमाये, वह आशियाँ, आशियाँ नहीं है ॥

वह दिन गये कि ज़िन्दगी-ए-दिलपै नाज़ था ।
मुद्दत हुई कि ग़म तो है, एहसासे-ग़म[1] नहीं ॥

'.कैफ़ी' चिड़िया कोटी

यह धोका हो न हो उम्मीद ही मालूम होती है ।
कि मुझको दूरसे कुछ रोशनी मालूम होती है ॥

ख़ुदा जाने किस अन्दाज़े-नज़रसे तुमने देखा है ।
कि मुझको ज़िन्दगी अब ज़िन्दगी मालूम होती है ॥

इसीका नाम शायद ज़िन्दगीने यास[2] रक्खा है ।
नफ़सकी जो ख़टक है, आख़िरी मालूम होती है ॥

तसव्वुरमें[3] है मेरे, यूँ फ़रेबे-बज़्म-आराई[4] ।
अँधेरी रात है, और चाँदनी मालूम होती है ॥

कहाँ हूँ, किस तरफ़ हूँ मैं ? ख़बर इसकी नहीं मुझको ।
यही गुम-गश्तगी[5] कुछ आगही[6] मालूम होती है ॥

सरे-मौजे-नफ़स[7] कश्तीए दिलको क्या कहूँ 'क़ैफ़ी' ।
उभरती है जहाँ तक डूबती मालूम होती है ॥

—निगार जुलाई १९५२

१. दुःखोंका आभास, ज्ञान, २. निराशा, ३. ध्यानमें, ४. महफ़िलोंके धोखे, ५. भुलक्कड़ स्वभाव, ६. मालूमात, बुद्धि, ७. इन्द्रिय वासनाओंकी लहरियोंमें ।

मुझको तर्के - मुद्आसे¹ जान देना सह्ल था।
लेकिन अब तेरी खुशीपर यह भी ठुकराता हूँ मै ॥
समा गया है, वह जाने - बहार आँखोंमें।
मेरी निगाहमें हर गुल नक़ाब रंगीं है ॥

—निगार अक्तूबर १९५४

'कौसर' मेहरचन्द

मै साथ जाऊँगा नामाबरके कि देखूँ उससे वह कहते क्या है।
सुनूँगा यूँ छुपके उनकी बातें, उठाऊँगा लुत्फ़ गुफ्तगूका, ॥
यह सोचता हूँ कि मेरी राहें फिर इतनी पुरअम्न किस लिए थीं ?
लुटा है मंज़िलपै आके 'कौसर' जो कारवाँ मेरी आर्ज़ूका ॥

वजहे-सकूँ है, आलमे - सरमस्ती - ओ - जुनूँ।
अच्छा हुआ कि होशका काँटा निकल गया ॥

—बीसवीं सदी फ़रवरी १९५६

यह सुबह, सुबहे-मसर्रत, न शाम, शामे-तरब।
हयात कश-म-कशे - जब्रो - इख्तियारमें है ॥
उधर उन्हें नहीं फ़ुर्सत नज़र उठानेकी।
इधर ज़माना क़यामतके इन्तज़ारमें है ॥
मेरी हयाते-मुहब्बत अजब मुअम्मा है।
न अख्तियारसे बाहर न अख्तियारमें है ॥
बिछे हुए हैं, चमनमें रविश-रविश काँटे।
खिज़ाँका ज़ह्र अभी सीनाए-बहारमें है ॥

१. चाहतके त्यागसे।

तेरे जमालने बख़्शा इसे कमाले-सुख़न ।
वगर्ना 'कौसरे'-नाशाद किस शुमारमें है ।

—तहरीक अक्तूबर १९५४

'कौसर' क़ुरैशी

मुझे आता है 'कौसर' हश्रगाहोंसे गुज़र जाना ।
मैं इन्साँ हूँ मेरी तौहीन है घुट-घुटके मर जाना ॥
यह कैसा अज़्मे-मंज़िल ऐ अमीरे-जादहे-मंज़िल !
यह क्या अन्दाज़ है, दो गाम चलना और ठहर जाना ॥

कृष्ण मोहन

सरे राहे

शर्बती होंट हिले और शराबी आँखें
मुझसे कुछ कहने लगीं
नीम ख़्वाबीदासे बेचैन अरमाँ
करवटें लेने लगे

. . . .

पलकोंके साये तले
एक पैमाने-वफ़ा बाँधा गया

यास

याद आते हैं, ख़िज़ाँ के पत्ते
ज़र्द पत्तोंपे वह शबनमकी बहार
एक कैफ़ियते-यास
आरिज़े-ज़र्दपे जिस तरह बहे अश्के-वफ़ा

—तहरीक सितम्बर १९५४

'ख़लिश' दर्दी बड़ौदी

खेलते हैं जो मज़लूमोंकी जानोंसे।
हैवान अच्छे हैं ऐसे इन्सानोंसे॥
फिर तूफ़ानोंपर भी क़ाबू पा लोगे।
पहले टकराना सीखो तूफ़ानोंसे॥
दिलका रोना रोयें हम किसके आगे।
दुनिया ही अब ख़ाली है इन्सानोंसे॥
मैं भी 'ख़लिश' दुनियामें हूँ लेकिन इस तरह—
दूर हक़ीक़त हो जैसे अफ़सानोंसे॥

—शाइर जून १९५०

'ख़ामोश' गाजीपुरी

ख़ामोश वह आये है, हाथोंमें लिये दामन।
जब चश्मे-मुहब्बतमें बाक़ी न रहा आँसू॥

—बीसवीं सदी जुलाई १९५६

'ख़िज़ा' प्रेमी

किसीकी यह अदा कितनी भली मालूम होती है।
नज़र उठती नहीं, उठती हुई मालूम होती है॥

वही आपका तसव्वुर वही अश्ककी रवानी।
यूँ ही बुझ गईं उमंगें, यूँ ही मिट गई जवानी॥

यह मैंने माना कि आज हर शयपै ज़िन्दगीका निखार-सा है।
न जाने क्यों यह हसीन मंज़र, मेरी निगाहोंपै बार-सा है॥

चलो आज जी भरके आँसू बहा लें।
यह तारोंभरी रात आये-न-आये॥

ग़म एक इम्तहान था, इन्सानके लिए।
जो लोग अह्ले ज़ौक़ थे, वोह मुसकरा दिये॥

'ख़ुमार' अंसारी एम० ए०

चमनमें गुरबतो-फ़ाक़ाक़शीका नाम न लो।
यह बेबसी ही सही, बेबसीका नाम न लो॥
फ़सुर्दा गुलका, फ़सुर्दा कलीका नाम न लो।
भरी बहारमें पज़मुर्दगीका नाम न लो॥
ज़बान बन्द करो चुप रहो यह ठीक नहीं।
किसीका राज़ न खोलो किसीका नाम न लो॥
ख़िरदसे दूर रहो आगहीसे दूर रहो।
ख़िरदका नाम न लो आगहीका नाम न लो॥
बहुत ही ख़ूब है, यह शग़्ले-मैकशी रिन्दो!
मगर ख़ुदाके लिए मैकशीका नाम न लो॥
नज़रको ताब नहीं सुबहके उजालोंकी।
कुछ और ज़िक्र करो रोशनीका नाम न लो॥
हम इस मनाए-जहाँपै फ़ख़्र करते हैं,।
हमारे सामने दामनदरीका नाम न लो॥
यह और बात कि ग़म ज़िन्दगीमें हो लेकिन।
यह मसलहत है ग़मे-ज़िन्दगीका नाम न लो॥

खिज़ाँ रसीदह गुलोंको खबर न हो जाये।
चमनके साथ कभी ताज़गीका नाम न लो॥
हमारी खातिरे-नाज़ुकपै बार होता है।
हमें पसन्द नहीं सरकशीका नाम न लो॥
हमारा हुक्म है, शैतानकी करो तारीफ़।
'ख़ुमार' जुर्म है, यह, आदमीका नाम न लो॥

—बीसवीं सदी जून १९५६

बहुत मुल्तफ़ित हो, बहुत महर्बाँ हो।
तबाहीमें शायद कमी रह गई है॥
मुहब्बतकी पुरकैफ़ रातें कहाँ है।
सुलगती हुई चाँदनी रह गई है॥
'ख़ुमार' अहले-दुनियाको यह भी गराँ है।
जो लबपै ज़रा-सी हँसी रह गई है॥

—बीसवीं सदी जुलाई १९५६

'ख़याल' रामपुरी

बस अब चाके-गरेबाँ अहले-वहशत सी लिये जायें।
कहाँ तक मुसकराये जायें गुञ्चे, गुल हँसे जायें॥
कभी दिल भी, मगर अब रूह भी बेचैन रहती है।
ख़ुदा जाने कहाँ तक उनके गमके सिलसिले जायें॥
न छेड़ें चारागर ज़ख्मे-जिगरको, इक ज़रा ठहरें।
जब आँखें बन्द हो जायें तो टाँके दे दिये जायें॥
चमनसे फूल जाते है, तो काँटे क्यों रहें बाक़ी।
बहारें साथ लाई थीं बहारें साथ ले जायें॥

मयस्सर आ गया है, आपका दामन मुक़द्दरसे।
अब इतना ज़ब्त ही कब है कि, आँसू पी लिये जायें ॥
कहो अहले-चमन अब फिर बहारें आनेवाली हैं।
नशेमनके लिए तिनके मुहैय्या कर लिये जायें ॥
'ख़याल' उसकी मशीय्यतमें किसीको दख़्ल ही क्या है।
हमारा काम इतना है, कि हम कोशिश किये जायें ॥

—तहरीक अक्टूबर १९५४

'ख़ुर्शीद' फ़रीदाबादी

आ जाये न उनकी निगहे मस्तपै इल्ज़ाम।
ऐ दोस्त ! न कर तज़किरए-गर्दिशे-ऐय्याम ॥

माना कि हर बहारमें पर टूटते रहे।
फिर भी तवाफ़े-सहने-गुलिस्ताँ किये गये ॥
जितना वह लुत्फ़ हमपै फ़रावाँ किये गये।
उतना ही हाल अपना परीशाँ किये गये ॥

इक ग़मे-मुस्तक़बिलसे भी गामज़न रहता।
मुड़ने लगे तो उनसे मुलाक़ात हो गई ॥
जब दिलको उस नज़रमें मुलाक़ात हो गई।
सब मरहले-सफ़र रह गये और बात हो गई ॥

क़ायम दूर ही से नज़र आ गया है।
क़यामत है अपनी बुलन्द आशियानी ॥

गनी अहमद 'गनी'

कुछ कम है आज तीरसे बेताबिए-जुनूँ ।
तुम मेरे पास आओ कि मैं हाले-दिल कहूँ ॥
अल्लाह रे पर्दादारिए-उल्फ़तका माजरा ।
ख़ुद आ सकूँ क़रीब न तुमको बुला सकूँ ॥

—निगार मार्च १९५२

'गुलज़ार' देहलवी

अगर हदमें अर्ज़ो-समाके मुश्ते क्या होते ?
मेरी फ़ितरतने सीखा ही नहीं मुश्किलसे डर जाना ॥

जहाँ इन्सानियत वहशतके आगे ज़िबह होती है ।
वहाँ ज़िल्लत है दम लेना, वहाँ बेहतर है मर जाना ॥

'ज़मीन'-अख़्तर 'ज़मीन' नज़मी

ख़बर भी है गुलो-गुलशनमें रहने वाले
पयामे-क़ैदो-अमाँ है यह बहार नहीं ॥

—शायरी मई अप्रैल १९५१

ज़मीन

ख़ुश्क होने न दिये मैंने आँसू ।
[illegible] मुस्कराके देख लिया ॥

हसरत ही रह गई कि जल्वे-बहारमें ।
दो दिन तो ज़िन्दगीके ख़ुशीमें गुज़ारते ॥

[illegible] हमदर्दी [illegible] ।
[illegible] लिख देना था ॥

'ज़रीफ़' देहलवी

आज़ाद शायरी[1]

पेड़ पर इक दुम कटी-सी फ़ाख़्ता
जैसे दौलतमन्द साहूकारकी वह दाश्ता

हुस्नके क़ाफ़िलेने जिसका खसोटा हो जमाल
सोगमें जो हुस्ने-रफ़्ताके मसहरी पर पड़ी रोती रहे होकर निढाल

आह बेदुम फ़ाख़्ता
याद आता है मुझे अपना शबाब

मैं समझता हूँ तेरे अरमान कहे जाते, तूफ़ाँ-ख़ेज़ो-आलम सोज़को
ग़म न कर

क्यों घुली जाती है ग़मो-फ़िक्रके दरिया-ए-बे तूफ़ानों बे-अमवाज़में
इसमें कुछ हासिल नहीं

बस समझ ले यह जवानी चलती-फिरती छाँव है
आई और फुर से उड़ी

—आजकल १५ जुलाई १९४९

'जलील' किदवई

कभी हमने भी पुरदर्द कोई गीत सुनाया ?
हम उनको मनाते रहे, और उसने न माना ॥

—निगार अप्रैल १९४२

१. स्वच्छन्द पद्य।

जाफरी

[सर इक़बालकी मशहूर नज़्म—"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" की पैरेडी]

रहनेको गो नहीं है लाहौरमें ठिकाना।
चीनो-अरब हमारा, हिन्दोस्ताँ हमारा॥
रहते है उस मकाँमें छत जिसकी आस्माँ है।
ख़ंजर हिलालका है, क़ौमी निशाँ हमारा॥
दफ्तर दिया है हमको छीन और झपटके ऐसा।
हम उसके पासबाँ है, वोह पासबाँ हमारा॥
जिनको मकाँ मिले थे, कहते थे उनसे चूहे।
"आसाँ नहीं मिटाना, नामो निशाँ हमारा॥"

पुराना कोट

बना है कोट यह नीलामकी दुकाँके लिए।
सिलाए-आम है याराने-नुक्तादाँके लिए॥
बड़ा बुजुर्ग है यह आज़मूदाकार है यह।
किसी मरे हुए गोरेकी यादगार है यह॥
न देख कुहनियोंपर इसकी ख़स्ता सामानी।
पहन चुके है इसे तुर्क और ईरानी॥
जगह-जगहपै फिरा, मिस्ले-मारकोपोलो।
यह कोट, कोटोंका लीडर है, इसकी जय बोलो॥
बड़ा बुजुर्ग है यह, गो कलील क़ीमत है।
मियाँ बुजुर्गोंका साया बड़ा ग़नीमत है॥

जगह-जगह जो यह कीड़ोंकी ज़र्बकारी है।
नई तरहकी यह सनअ़त है दस्तकारी है॥

जो क़द्रदाँ हैं, वोह जानते हैं क़ीमतको।
कि आफ़ताब चुरा ले गया है रंगतको॥

है इसपै धब्बे जो सुर्ख़ीके और सियाहीके।
निशान है किसी टीचरकी बादशाहीके॥

जगह-जगह जो यह धब्बे हैं और चिकनाई।
पहन चुका है कभी इसको कोई हलवाई॥

गुज़िश्ता सदियोंकी तारीख़का वरक है यह कोट।
ख़रीदो इसको कि इबरतका इक सबक़ है यह कोट॥

'ज़ावर' मुहम्मद क़ासिम

मुसकराहटसे यह हुआ ज़ाहिर।
दिल्बरोंमें है तू बड़ा माहिर॥
क्यों बुलाती है मौजए-दरिया।
डूबनेमें हूँ मैं ही क्या माहिर?
साथ मेरा न दे सके तारे।
चार झोंकोंमें सो गये आख़िर॥
अपनी संगीन गोद फैला दे।
मौत! आता है इस तरफ़ 'ज़ावर'॥

—आजकल १ दिसम्बर १९४९

'ज़ावर' फ़तहपुरी

कफ़समें डाल दिया है सज़ा-जज़ाके मुझे।
करम किया कि सितम, आदमी बनाके मुझे?

यह मानता हूँ कि बेशक गुनाहगार हूँ मैं।
ख़ता मुआफ़! मै तेरी तरह ख़ुदा तो नहीं॥

हज़ार गम सहे मैंने, हज़ार दुःख झेले।
मुसीबतोंसे मेरा दिल अभी बहा तो नहीं॥

सज़ा-जज़ाके झमेलोंसे गर मिले फ़ुर्सत।
तो ग़ौर करना ब-आग़ोशे-ख़िल्वते-वहदत॥
लिबासे-नंग हूँ तेरा कि ज़ेवरे-ज़ीनत!
मगर है तनपै तेरे ख़िलअ़ते-रबूबीयत॥

मेरे ख़ुदा तुझे अब यह भी सोचना होगा।
करम किया कि सितम आदमी बनाके मुझे॥

'जिगर' रंगबहादुरलाल

यकसाँ जो हसीनोंकी तक़दीर 'जिगर' होती।
क्यों शमअ़ जली होती, क्यों फूल खिला होता॥

खिले है फूल जो रोई है रातभर शबनम।
हँसी नहीं है हसीनोंका मुसकरा देना॥

रिया नीयतमें थी, ज़ाहिदने गो सजदोंमें सर मारा ।
सियह रूईका धब्बा रह गया, दागे-जबीं होकर ॥

'ज़िया' फ़तेहाबादी

ऐ नफ़स ! तेरी ख़ातिर सुबहो-शाम जीना हूँ ।
ज़िन्दगी ग़नीमत है, तेरे आने - जानेसे ॥
ज़िन्दगीके दर - परदा जाने क्या हक़ीकत है ।
मौत जब कभी आती है तो किसी बहानेसे ॥
मैं तुझे भुला तो दूँ, क्या करूँ मगर इसको ।
ख़ुदको भूल जाता हूँ, तेरे याद आनेसे ॥
जब नये ज़मानेका ज़िक्र कोई करता है ।
ज़हनमें उभरते हैं वाक़ये पुराने-से ॥

—शाइर जनवरी १९५२

उनको अपना बना सकूँगा कि नहीं ।
उम्र इसी फ़िक्रमें गँवा दी है ॥
आल्मे - बेख़्दी — बेख़ुदीमें तुझे ।
हमने आवाज़ बार - हा दी है ॥
कोशिशें अम्न तो बजा हैं मगर—
आदमी फ़ितरतन फ़िसादी है ॥

—आजकल १५ नवम्बर १९५२

मेरी आँखकी तुम नमीको न देखो ।
मेरे आल्मे - बरहमीको न देखो ॥

मेरी ज़िन्दगीकी कमीको न देखो ।
मेरे चैहरे - मातमीको न देखो ॥
मैं इन्सानियतका कफ़न बेचता हूँ ।
ख़रीदो मुझे जानो - तन बेचता हूँ ॥

'जुरअत' सलाम जुरअत अंजनगाँवी

दिलोमें सोज़े[1] - बेतासीर[2] क्यों है, हम नहीं समझे ।
हक़ीक़तकी ग़लत तफसीर[3] क्यों है, हम नहीं समझे ॥
मुसल्लिम हुस्नकी तौक़ीर[4] लेकिन वाक़या ये है ।
जुनूने-इश्क़ दामनगीर[5] क्यों है, हम नहीं समझे ॥
अगर महदूद थी उनकी तजल्ली चश्मे - मूसातक[6] ।
तो फिर जल्वोकी यह तशहीर[7] क्यो है, हम नहीं समझे ॥
मुहब्बतका ख़ुदा होना यक़ीनन है बजा लेकिन ।
मुहब्बत दर्दकी तफसीर[8] क्यो है, हम नहीं समझे ॥
ब-ज़ाहिर तो नहीं है, कोई भी 'बातिलका शैदाई[9] ।
गलेपर हक़के[10] फिर शमशीर क्यों है, हम नहीं समझे ॥
हर - इक तद्बीर है आईनादारे रंगेनाकामी[11] ।
मुसलसल गर्दिशे तक़दीर[12] क्यो है, हम नहीं समझे ॥

१. प्रेम अग्नि, २. बेअसर, ३. सत्यका भ्रामक अर्थ, ४. सौन्दर्यकी गरिमा अक्षुण्ण, ५. प्रेम उन्माद पल्ला पकड़े हुए, ६. उनका (ख़ुदाका) जल्वा केवल मूसाके लिए सीमित था, ७. ईश्वरीय दर्शनको विज्ञप्ति पब्लिसिटी, ८. भाष्य, ९. आधिभौतिकताका, १०. आध्यात्मिकताके ११. हर प्रयत्न असफलताका दर्पण है, १२. भाग्य चक्रमें निरन्तर ।

शिकायतए सुफ - क़रतासपर[१] हम ला नहीं सकते।
अभी पाबन्दए - तहरीर क्यों है, हम नहीं समझे॥
ज़मींपर भी सकूने-दिल जिन्हें मिलता नहीं 'जुरअत'!
मुख़ालिफ उनका चर्ख़े-पीर क्यों है, हम नहीं समझे॥

—आजकल नवम्बर १९५४

'ज़ेब' बरेलवी

दौराने-असीरी नज़रोंमें हरवक्त नशेमन रहता था।
जब छूटके आये गुलशनमें हम अपना ठिकाना भूल गये।
हम कैफे - नज़रके आलममें सरशारे-जमालेहस्ती थे।
जब सामने जामे-मै आया हम जाम उठाना भूल गये॥

—आजकल अक्तूबर १९५६

'जौहर' चन्द्रप्रकाश विजनौरी

नामुकम्मिल ही रहती मेरी बन्दगी।
वह तो कहिए तेरा आस्तॉ मिल गया॥
ग़मने इस तरह की अश्कमें दिल दही।
मैं यह समझा कोई महरबॉ मिल गया॥

—बीसवीं सदी नवम्बर १९५६

तेरे बग़ैर ऐ जाने-तगाफुल!
दिलकी हर धड़कन है अधूरी॥
तुझको भुलाकर अब मैं समझा।
तेरा ग़म था कितना ज़रूरी॥

---

१. काग़ज़पर।

'तमकीन' कुरैशी

दिल और वह भी टूटा हुआ दिल ?
अब ज़िन्दगी है, जीनेके क़ाबिल ?

जोशे-जुनूँमें यकसाँ हैं दोनों।
क्या गर्दे-सेहरा, क्या ख़ाके-मंज़िल ॥

ज़िन्दगी तेरे तसव्वुरसे अलग रह न सकी।
नग़मा कोई हो, मगर साज़ यही काम आया ॥

—आजकल दिसम्बर १९५२

'ताविश' सुलतानपुरी

जहाँवाले न देखें इसलिए छुप-छुपके पीता हूँ।
ख़ुदाका ख़ौफ कैसा ? वह तो इसयाँपोश है साक़ी !

'तसकीन' मुहम्मद यासीन

कुछ और पूछिए यह हक़ीक़त न पूछिए।
क्यों मुझको आपसे है मुहब्बत, न पूछिए ॥

न जाने मुहब्बतमें क्यों है ज़रूरी।
वोह कुछ हसरतें जो कभी हों न पूरी ॥

मुझे अज़ीज़ सही ख़ाके-दिल मगर यह क्या ?
तुम्हींने आग लगाई तुम्हीं बुझा न सके ॥
वो हम क्या करेंगे मदावाए-दर्दे-दिल-'तसकीं' ।
जो इक निगाहे-मुहब्बतकी ताब ला न सके ॥

इश्क़से पहले न समझे थे, ख़ुशी होती है क्या ?
क्यों चमकते हैं सितारे, चाँदनी होती है क्या ॥

कोई हँस रहा है, कोई रो रहा है ।
यह आख़िर क्या तमाशा हो रहा है ॥
मुहब्बतमें किसीकी क्या शिकायत ।
जो होता आ रहा है, हो रहा है ॥

लबपर तबस्सुम आँखोंमें आँसू ।
हम लिख रहे हैं, अफ़सानए-दिल ॥

—निगार अप्रैल १९५२

'तुफ़ा' क़ुरैशी

टूटी-टूटी-सी हयाते-आलम, मिटा-मिटा-सा जहाँका नक़्शा ।
यह किसकी नज़रोंकी जुम्बिशोंपर, निज़ामे-क़ायम है ज़िन्दगीका ॥

'वेग' इलाहाबादी

ज़ंजीरें

अपने छुटनेका इसको रंज नहीं ।
ग़म अगर है तो सिर्फ़ इसका है ॥
ग़ैर किरदारकी शराफ़तसे ।
उसने जो फ़ायदा उठाया है ॥

—शाइर जनवरी १९५२

'दर्द' सईदी टोंकी

निगाहमें अंजामे-जुस्तजू है, क़दम भी आगे बढ़ा रहा हूँ।
नज़र मुक़द्दर ही पर नहीं है, ख़ुदाको भी आज़मा रहा हूँ॥
यह क्यों फ़िज़ापर है यास तारी, यह हर तरफ़ क्यों उदासियाँ हैं।
अभी तो अपनी तबाहियोंपर मैं आप भी मुसकरा रहा हूँ॥

आ गया सब्र जीते जी आख़िर।
दिलपर एक ऐसी चोट भी खाई॥
मौतकी लैमें इश्कने अक्सर।
दास्ताने-हयात दोहराई॥
क़िस्सए-ग़म जहाँसे दुहराया।
उम्रे-रफ़्ता वहींसे लौट आई॥

जब तक तेरा सितम न गवारा हुआ मुझे।
तेरा करम भी मेरे लिए नागवार था॥

—निगार मार्च १९४८

कुछ ऐसे गिर गये है किसीकी नज़रसे हम।
हों जैसे हर निगाहमें नामौतबर-से हम॥
अब उनके दरसे कोई ताल्लुक़ नहीं, मगर—
सर फोड़ते है आज भी दीवारो-दरसे हम॥
अक्सर बयाने-ग़ममें उलझे है इस तरह।
जैसे कि अपने हालसे हों बेख़बर-से हम॥

न वोह रास्ते है, न वोह मंज़िलें है।
बदल ही दिया जैसे रुख़ ज़िन्दगीने॥

अभी आदमी आदमीका है दुश्मन ।
अभी ख़ुदको समझा नहीं आदमीने ॥
जहाँ सैकड़ों बुतकदे ढा दिये हैं ।
ख़ुदा भी तराशे हैं कुछ बन्दगीने ॥

—निगार दिसम्बर १९४७

रुबाइयात

रक़ासए-तहज़ीबको[1] घुँगरू पहनाओ !
ईवाने-तमद्दुनके[2] दरो-बाम[3] सजाओ !
मुज़दा[4] ! कि जना[5] है इरतक़ाने[6] ऐटम[7] ।
इन्सानकी अज़्मतों[8] ! परचम[9] लहराओ !

यह हादिसए-अज़ीम[10] भी गुज़र जाने दो !
दुनियाको तबाहियोंसे भर जाने दो !
कुछ फ़िक्र करो न इस दरिन्देके[11] लिए !
इस दौरके इन्सानको मर जाने दो ।

इक हश्र सिमट रहा है, अपनी ही तरफ़ ।
तूफ़ान झपट रहा है अपनी ही तरफ़ ॥
कौनैनका[12] दिल धड़क रहा है ऐ 'दर्द' !
इन्सान पलट रहा है अपनी ही तरफ़ ॥

—तहरीर नवम्बर १९५४

१. सभ्यता रूपी नर्तकीको, २ संस्कृति भवनके, ३. दरवाज़े, मुँडेरें, ४. शुभसमाचार, ५. पैदा किया है, ६. पारोने, ७. एटमबम, ८. मानवके गौरवो, ९. ध्वजा, १० महान् दुर्घटनाएँ, ११. पशुके, १२. संसारका ।

'दर्द' विश्वनाथ

जिनको आना था वह नहीं आये।
ढल रहे हैं, हयातके साये॥
वह अगर इल्तफ़ात फ़र्मायें।
दिल ग़मे-दहरसे न घबराये॥
अश्क पल्कों पै झिलमिलाने लगे।
जब वह तनहाइयोंमें याद आये॥
है मुहब्बतसे इरतक़ाये-हयात।
कौन अहले-ख़िरदको समझाये॥
हो जिसे ख्वाहिशे-हयाते-दवाम।
कारज़ारे-हयातमें आये॥
ऐ ग़मे-दोस्त तुझको अपनाकर।
कौन दुनियाके ग़म न अपनाये॥

—तहरीक अक्तूबर १९५४

'दीवाना' मोहनसिंह

गर्मिए क़ल्ब - ओ - रोशनिए - दिमाग़।
रहमते-हक़ हर - इक चरागे-अयाग॥
तंग दिल हैं, जहाने-तंग नज़र।
नहीं मुमकिन यहाँ कमाल फ़राग़॥
हाल तारीक तेरा मुस्तक़बिल।
रोशन इक तेरे नामका ही चराग़॥
पूछिए अन्दलीबे - नालाँसे।
क्या है, दरपर्दए - बहारे-बाग़॥

निकल आया हूँ दौरे - मंज़िलसे।
फिर भी मंज़िलका ढूँढता हूँ सुराग़॥
कोयलें छुपके गीत गाती हैं।
क़ुल्लए-कोहपर है, शोरिशे-ज़ाग़॥

—तहरीक सितम्बर १९४५

मिली शराब नज़रसे मगर नज़र न मिली।
जो मुल्तफ़ित[1] न हो साक़ी तो मह्रबानी क्या॥
बदलनेवाला दिलोंका वजूद[2] ख़ुदा है कौन।
फिर इन्क़लाबके नारोंके हैं मआनी क्या॥
सवाब[3] डरसे किये और गुनाह लालचसे।
तर्फ़ा[4] है ऐसी जवानीपे यह जवानी क्या॥
न कैफ़े-दर्द[5] न इफ़साने-ग़म[6] न हुस्ने-सलूक[7]।
बयाने-वाक़या हो महज़ तो कहानी क्या॥
उधर जमालका नाज़ और इधर वफ़ाका ग़रूर।
जो कश्म-मकशमें न गुज़रे वह ज़िन्दगानी क्या॥
ख़ुलूसे-अश्क़का उनको यक़ीन होके रहा।
हमारे सिद्क़के आगे थी बदगुमानी क्या॥
लगाये फिरते हो यूँ दाग़को कलेजेमें।
शबाबे-रफ़्ताकी[8] है इक यही निशानी क्या॥

१. कृपा करनेवाला, मदद देनेवाला, २. खुदाके सिवाय, ३. शुभकर्म, ४. अजब, ५. दर्दका वर्णन, ६. दुःखोंकी कहानी, ७. सौन्दर्यका बखान, ८. गुज़रे हुए यौवनकी।

निकल आया हूँ दौरे - मजिलसे।
फिर भी मंज़िलका ढूँढता हूँ सुराग़ ॥
कोयलें छुपके गीत गाती हैं।
कुल्लहे-कोहपर है, शोरिशे-ज़ाग़ ॥
—तहरीक सितम्बर १९५५

मिली शराब नज़रसे मगर नज़र न मिली।
जो मुल्तफ़ित[1] न हो साक़ी तो महरबानी क्या ॥
बदलनेवाला दिलोंका बजुज़[2] ख़ुदा है कौन।
फिर इन्क़लाबके नारोंके है मआ़नी क्या ॥
सवाब[3] डरसे किये और गुनाह लालचसे।
तर्फ़[4] है ऐसी जवानीपै यह जवानी क्या ॥
न कैफ़े-दर्द[5] न इरफ़ाने-ग़म[6] न हुस्ने-सलूक[7]।
बयाने-वाक़या हो महज़ तो कहानी क्या ॥
उधर जमालका नाज़ और इधर वफ़ाका ग़रूर।
जो क़दा-म-क़दमें न गुज़रे वह ज़िन्दगानी क्या ॥
ख़ुलूसे-अश्क़का उनको यक़ीन होके रहा।
हमारे सिदक़के आगे थी बदगुमानी क्या ॥
लगाये फिरते हो यूँ दाग़को कलेजेसे।
शबाबे-रफ़्ताकी[8] है इक यही निशानी क्या ॥

१. कृपा करनेवाला, तवज्जह देनेवाला, २. ख़ुदाके सिवाय, ३. शुभकर्म, ४. लानत, ५. व्यथाका वर्णन, ६. दुःखोंकी कहानी, ७. सौन्दर्यका वृत्तान्त, ८. गुज़रे हुए यौवनकी।

इलाही शिकवए-बेदादसे[1] मैं बाज़ आता हूँ।
कि मुझसे तो निगाहे-मुन्फ़इल[2] देखी नहीं जाती॥
यह कहकर दावरे-महशरने[3] मुझको ऐ 'दुआ' बख़्शा।
कि इस कम्बख़्तकी तरदामनी[4] देखी नहीं जाती॥
—आजकल जुलाई १९५४

'नक़वी' .क़ासिम वशीर

हम सहने-गुलिस्ताँमें अक्सर यह बात भी सोचा करते हैं।
यह आँसू है किन आँखोंके, फूलोंपै जो बरसा करते है॥
जीना हमें कब रास आया है, मरना हमें कब रास आयेगा ?
हाँ सिर्फ़ तेरे ग़मकी ख़ातिर, हर जब्र गवारा करते है॥
—आजकल मार्च १९५३

'नक्श' सहराई

बताएँ तो बताएँ हम भला क्या ?
मुहब्बत है मुहब्बतके सिवा क्या ?
जफ़ाओंकी ख़ताओंका गिला क्या ?
हर-इकसे होती आई है हुआ क्या ?
अक़ीदेकी ही सब बातें है वरना।
यह मस्जिद क्या, हरम क्या, मैकदा क्या ?
सफ़ीनेका नहीं, मुझको यह ग़म है।
जो शह दे नाख़ुदाको, वोह ख़ुदा क्या॥

---

१. अत्याचारोंकी शिकायतोंसे, २. नीची निगाहें, शर्मसार, ३. क़यामतके न्यायाधीशने, ४. मदिरासे भीगी पोशाक।

इस फ़िक्रो-नज़रकी दुनियासे इन्साँका उभरना लाज़िम है।
गुल कैसे खिलेंगे आइन्दा ? आईने-गुलिस्ताँ क्या होगा ?

जुनूँ ही हर क़दमपै साथ देता है मुहब्बतका।
खिरदकी रहबरी, अन्देशए-सूदो-ज़ियाँ तक है ॥

—निगार मई १६५२

जाहिद न छेड़ रहमते-यज़दाँकी[1] गुफ़्तगू।
हम कर रहे हैं तजज़ियें-अरहमन[2] अभी ॥

ज़िन्दगीपर डाल ली, जिसने हक़ीक़त-बीं निगाह।
ज़िन्दगी उसकी नज़रमें बे-हक़ीक़त हो गई ॥

—निगार अप्रैल १६५३

'नजहत' मुज़फ्फ़रपुरी

फ़रेबे-नज़र

दिलमें वह शर्मसार है अब तक।
खुद-ब-खुद बेक़रार है अब तक ॥
इश्क़की यादगार है अब तक।
दिल मेरा दाग़दार है अब तक ॥
हम पहुँच तो गये हैं मंज़िलपर।
जुस्तजूए-क़रार है अब तक ॥
लाल-ओ-गुलकी चाक दामानी।
मेरी आईनए-दार है अब तक ॥

---

१. ईश्वरकी दयालुताकी, २. शैतानका तजुर्बा, विश्लेषण।

एक बुतका हाथ हाथमें थामे हुए 'नज़ीर' !
किस शानसे तवाफ़े-हरम कर रहा हूँ मैं ॥

—आजकल मार्च १९५६

'नदीम' जाफ़िरी

हम रो रहे थे अपनी असीरीको ऐ 'नदीम' !
इक और हमसफ़ीर तहे-दाम आ गया ॥

—निगार जून १९५७

'नफ़ीस' क़ादिरी

रहे-नियाज़में[1] क्योंकर वोह शादमाँ[2] गुज़रे।
हयात पाके[3] जिसे ज़िन्दगी गराँ[4] गुज़रे ॥
जिन्हें था दिल्से इलाक़ा[5] न जिस्मो-जाँसे लगाव।
नज़रके साथ कुछ ऐसे भी इम्तहाँ गुज़रे ॥
दिले-हज़ींको[6] तड़पनेका शौक़ था वर्ना।
वोह लाख बार इधर होके महवशाँ गुज़रे ॥
नये-नये थे मनाज़र[7] जो राहे-हस्तीमें[8]।
क़दम-क़दमपै तमन्नाके कारवाँ[9] गुज़रे ॥
हमारे सामने आते हुए न शर्माओ।
कहीं न देखने वालोंको कुछ गुमाँ[10] गुज़रे ॥
इलाही ख़ैर कि उनका मिज़ाज बरहम[11] है।
वोह आज होके बहुत मुझसे बद गुमाँ गुज़रे ॥

—निगार अप्रैल १९५४

१. प्रेम-मार्गमें, २. प्रसन्न, ३. ज़िन्दगी, ४. बोझल, ५. सम्बन्ध, ६. दुःखी हृदयको, ७. दृश्य, ८. जीवन-मार्गमें, ९. यात्रीदल, १०. शक, ११. बिगड़ा हुआ।

एक बुतका हाथ हाथमें थामे हुए 'नज़ीर'!
किस शानसे तवाफ़े-हरम कर रहा हूँ मैं॥
—आजकल मार्च १९४६

'नदीम' जाफ़िरी

हम रो रहे थे अपनी असीरीको ऐ 'नदीम'!
इक और हमसफ़ीर तहे-दाम आ गया॥
—निगार जून १९५०

'नफ़ीस' क़ादिरी

रहे-नियाज़में[1] क्योंकर वोह शादमाँ[2] गुज़रे।
हयात पाके[3] जिसे ज़िन्दगी गराँ[4] गुज़रे॥
जिन्हें था दिलसे इलाक़ा[5] न जिस्मो-जाँसे लगाव।
नज़रके साथ कुछ ऐसे भी इम्तहाँ गुज़रे॥
दिले-हज़ींको[6] तड़पनेका शौक़ था वर्ना।
वोह लाख बार इधर होके महर्बाँ गुज़रे॥
नये-नये थे मनाज़र[7] जो राहे-हस्तीमें[8]।
क़दम-क़दमपै तमन्नाके कारवाँ[9] गुज़रे॥
हमारे सामने आते हुए न शर्माओ।
कहीं न देखने वालोंको कुछ गुमाँ[10] गुज़रे॥
इलाही ख़ैर कि उनका मिज़ाज बरहम[11] है।
वोह आज होके बहुत मुझसे बद गुमाँ गुज़रे॥
—निगार अप्रैल १९५४

१. प्रेम-मार्गमें, २. प्रसन्न, ३. ज़िन्दगी, ४. बोझल, ५. सम्बन्ध, ६. दुःखी हृदयको, ७. दृश्य, ८. जीवन-मार्गमें, ९. यात्रीदल, १०. शक, ११. बिगड़ा हुआ।

हमारी हिम्मतकी दाद दे क्या, कि पस्त फ़ितरत है यह ज़माना।
जहाँ पै बिजली चमक रही है, वहीं नशेमन बना रहे हैं॥
यह शाख़ काटी. वह शाख़ काटी, इसे उजाड़ा, उसे उजाड़ा।
यही है शेवा जो बाग़बाँका, तो हम गुलिस्ताँसे जा रहे हैं॥
'नफ़ीस' के ज़ुहदे-इत्तक़ाकी, ज़माने भरमें थी एक शुहरत।
ख़ुदाकी क़ुदरत वह बुतकदेमें हरमसे तशरीफ ला रहे हैं॥

—बीसवीं सदी अक्टूबर १९५६

'नश्तर' हतगामी

जो सैयादने पूछा "क्या चाहते हो" ?
"क़फ़स" कह गया आशियाँ कहते-कहते॥
जहाँ दास्ताँ-गोका रुकना सितम था।
वहीं रुक गया दास्ताँ कहते-कहते॥

—शाइर अप्रैल १९५०

नसीम' शाहजहाँपुरी

तेरी निगाहने की मेरी दिलदही[1] अक्सर
यह तर्ज़े-पुरसिशे-ख़ामोश[2] कोई क्या जाने ?
न पुरसिशोंकी तमन्ना[3], न आर्ज़ूए-करम[4]।
अब उन हदोंसे कुछ आगे हैं, तेरे दीवाने॥

१. सान्त्वना देना, पूछ-ताछ, २. हालचाल पूछनेका मूक ढंग, ३. ख़बरगीरीकी इच्छा, ४. कृपाकी इच्छा।

'नाज़िम' अज़ीज़ी सम्भली

आरिज़ो-ज़ुल्फ़े-सियह-फ़ामसे आगे न बढ़ी।
ज़िन्दगी इन सहर-ओ-शामसे आगे न बढ़ी॥
क़ाबिले-फ़ख़ है मेरी वह हयाते - शीरीं।
जो कभी तल्ख़िए-ऐय्यामसे आगे न बढ़ी॥
उस नवाज़िशपै तसद्दुक़ है दुआएँ सारी।
जो हमारे लिए दुश्नामसे आगे न बढ़ी॥
क्या कहूँ कर चुकी तै कितने मराहिल फिर भी।
ज़िन्दगी मआरिज़े-आलामसे आगे न बढ़ी॥
उस नज़रपै भी हैं, मशकूक निगाहें तेरी।
जो कभी तेरे दरो-बामसे आगे न बढ़ी॥
शुक्रिया इस तेरी बरहम निगहीका ऐ दोस्त!
जो हमारे दिले-नाकामसे आगे न बढ़ी॥
उस मुहब्बतपै अभीसे हैं निगाहे-दुनिया।
जो अभी नामा-ओ-पैग़ामसे आगे न बढ़ी॥
उस इबादतपै हैं मग़रूर बहुत मेरे गुनाह।
वह इबादत जो तेरे नामसे आगे न बढ़ी॥
हाय क्या कहिए मुहब्बतमें मेरी सई-ए-यक़ीन
वह गुमानीमें और औहामसे आगे न बढ़ी॥
हम तो उस बादाकशीके नहीं क़ायल 'नाज़िम'!
आज तक जो ख़लिशे - जामसे आगे न बढ़ी॥

—बीसवीं सदी जून १९५१

इब्तदाए-महरबानी तोड़-फोड़ ।
इन्तहाए-कहरमानी तोड़-फोड़ ।।
मिन्तहाए-कारवानी तोड़-फोड़ ।
इनक़लाबीकी निशानी तोड़-फोड़ ।।
तोड़-फोड़ इक आलमे-वहशतमें है ।।

—तहरीक मई १९५५

'निशात' सईदी

परबादियोंने रूप भरा है बहारका ।
बर्क़ो-बलाकी ज़दपै गुलिस्ताँ अभीसे है ।।
यह दिल बचाये-फ़िरक़ापरस्तीका है शिकार ।
इन्सानियतकी मौत नुमायाँ अभीसे है ।।
रहबरने राहज़नसे बढ़ाई है दोस्ती ।
मंज़िलपै आके लुटनेका इमकाँ अभीसे है ।।

—शाइर दिसम्बर १९४९

'नीमाँ' अकबराबादी

वोह मेरी हालतमें है परीशाँ, नहीं है कुछ उनका दिल भी ख़न्दाँ ।
मगर तबस्सुमकी ओटमें वोह उसे छुपाना भी चाहते हैं ।।

कोई बताये कि क्या करें हम, अजीब आलम है कश्म-म-कशका ।
ख़याले-पासे-ख़ुदी भी है और उन्हें बुलाना भी चाहते हैं ।।
उन्हें ग़रूरे-जमाल भी है, मगर हमारा ख़याल भी है ।
वोह आयें 'नीमाँ' तो कैसे आयें, मगर वोह आना भी चाहते हैं ।।

मेरे बख़्ते-नारसाने दिया इस जगह भी धोका।
मुझे थी तलाशे-तूफ़ाँ मुझे मिल गया कनारा॥

ज़बाँपै मुहरे-सकूत है और नज़रसे करते है पुरसिशे-दिल।
इस एहतियाते-नज़रके सदक़े समझ न जाये कहीं ज़माना॥

'नीसाँ' ख़ुशीके नामपै जो मुसकरा दिया।
तक़दीरपै वोह तंज़ था, लबपर हँसी न थी॥

जैसे कोई कुछ कहना चाहे यूँ होंट हिले और थर्राये।
इससे ज़्यादा ऐ 'नीसाँ'! तुम जुरअते-शिकवा क्या करते?

—निगार जुलाई १९४६

कुछ हुस्नमें तू भी यकता है, तसलीम किया मैंने लेकिन।
कुछ मेरी निगाहें भी तेरे जल्वोंको सँवारा करती है॥
तूफ़ानमें किश्ती आई भी और डूबनेवाला डूब गया।
अब क्या है, जो साहिलपर[1] लहरें उठ-उठके नज़ारा करती है॥
बेताब है दिल जिनकी ख़ातिर, मै जिनको तरसता रहता हूँ।
मुझसे भी छुपाकर मेरी तरफ़ वह नज़रें देखा करती हैं॥
'नीसाँ' यह कहाँसे दिलमें तुम इक दर्द बसाकर लाये हो।
तनहाईमें उठ-उठकर टीसें यह किसको पुकारा करती है?

—निगार नवम्बर १९५१

१. दरिया किनारेपर।

'नैयर' अक़बराबादी

मरना तो मुक़द्दर था, सैयादने उजलत की।
जीते न चमनवाले, जब दौरे-ख़िज़ाँ होता॥

ग़लतफ़हमी न हो जाये किसीको मेरी जानिबसे।
ख़ुदाके वास्ते दीवाना कह दो एक बार अपना॥

वोह एक तुम, तुम्हें फूलोंपै भी न आई नींद।
वोह एक मैं, मुझे काँटोंपै इज़्तराब न था॥

फ़स्लेगुल याद ख़िज़ाँमें मुझे यूँ आती है।
जब कोई ख़ार चुभा, मैंने कहा—'हाय बहार'!

चमनको कौन यूँ बरबाद होते देख सकता है।
ठहर इतना कि बन्द आँखें हम ऐ दौरे-ख़िज़ाँ करलें॥

मायूसियाँ पहुँच गईं हद्दे-कमाल तक।
जब ख़ाक हम हुए तो उधरकी हवा नहीं॥

इसी दुनियाकी अक्सर तल्ख़ियोंने मुझको समझाया।
कि हिम्मत हो तो फिर है ज़हर भी एक चीज़ खानेकी॥

उम्मीदो-बीममें 'नैयर' अभी इक जंग बरपा है।
मेरी कश्ती पलट आती है, टकर खाके साहिलसे॥

वह भी सच्चे, ख़्वाबमें आनेका वादा भी दुरुस्त।
शक मगर हमको शबे-ग़म नींदके आनेमें है॥

आओ ज़रा सकूनकी दुनिया भी देख लो।
तुमको शिकायतें थीं मेरे इज़्तराबकी॥

कुछ इसके आनेसे तस्कीं-सी होती है 'नैयर'!
कहाँसे आती है बादे-सबा ख़ुदा जाने॥

कुछ ऐसा डूबनेका न होता मुझे मलाल।
मुश्किल यह आ पड़ी थी कि साहिल नज़रमें था॥

सहराकी वुस्अ़तोंमें भी बहला न मेरा जी।
अब मै यह क्या कहूँ कि परेशान घरमें था॥

बढ़ी है क़ल्बकी धड़कन तुम्हारे वादोंसे।
उम्मीदवारको पहले यह इज़्तराब न था॥

उसने यूँ देखा मुझे गोया कि देखा ही नहीं।
फिर भी मुझतक इक पयामे-नातमाम आ ही गया॥

हद्दे - सईए - तलबमें[१] गुज़र गया हूँ मैं।
वोह मिल गये हैं मगर, उनको ढूँढ़ता हूँ मैं॥

---

१. अभिलाषाओंकी सीमासे।

किसे मालूम था मंज़िल ही मुझसे रूठ जायेगी।
लरज़कर टूट जायेंगे मेरी क़िस्मतके सैयारे॥
सरे-बाज़ार बिक जायेगी तेरे प्यारकी ग़ैरत।
चलेंगे अश्कके हस्सास दिलपर ज़ुल्मके आरे॥
बड़े अरमानसे मैंने चुना था जिनको दामनमें।
किसे मालूम था वह फूल बन जायेंगे अंगारे॥

जहाँ तू है वहाँ हैं, नुकरई साज़ोंकी झनकारें।
जहाँ मैं हूँ वहाँ चीख़ें है, फ़रियादें हैं, नाले है॥
मेरी दुनियामें ग़म-ही-ग़म है तारीकी-ही-तारीकी।
तेरी दुनियामें नग़मे है, बहारें है, उजाले है॥
मेरी झोलीमें कंकर हैं, तेरी आग़ोशमें हीरे।
तेरे पैरोंमें पायल है, मेरे पैरोंमें छाले है॥

मैं जब भी ग़ौर करता हूँ, तेरी इस बेवफ़ाईपर।
तो ग़मकी आगमें मेहरो-वफ़ाके फूल जलते हैं॥
न फ़रियादोंसे जंजीरोंकी कड़ियाँ टूट सकती है।
न अश्कोंसे निज़ामे-वक़्तके तेवर बदलते हैं॥
मै भर सकता हूँ तेरी यादमें हसरत भरी आहें।
मगर आहोंकी गर्मीसे कहीं पत्थर पिघलते है?

—बीसवीं सदी अगस्त १९५६

मैं वह ग़म हूँ जिसे मुहब्बतने,
दिलकी गहराइयोंमें पाला है।

वह लताफ़त वह नाज़ुकी, वह नाज़,
वह तक़द्दुस वह ताज़गी हाये!
—चाँदनी सदी नवम्बर १९५१

जाने वालो

जीवनके अँधियारे पथपर मुझे अकेली छोड़ चले हो।
मुझसे कैसा दोष हुआ है मुझसे क्यों मुँह मोड़ चले हो।
क्यों मेरा दिल तोड़ चले हो?
चुप क्यों हो तुम कुछ तो बोलो, कुछ तो मेरा दोष बताओ।
रुक जाओ ऐ जाने वालो! रुक जाओ, रुक जाओ॥

ऐ निरमोही! ऐ हरजाई! तुम क्या जानो पीर पराई।
सोच रही हूँ पगले मनने तुमसे काहे प्रीत लगाई!
काहे प्रेमकी जोत जगाई?
प्रेमकी इस जोतीको प्यारे अपने हाथोंसे न बुझाओ।
रुक जाओ ऐ जाने वालो! रुक जाओ, रुक जाओ॥

कलियो, गुञ्चो, फूलो, पत्तो, मस्त मनोहर मधुर बहारो!
नीले अम्बरके आँचलपर झिल-मिल करते शोख़ सितारो।
मौसमके मदहोश नज़्ज़ारो!
तुम ही निरमोही साजनको मेरे दिलका हाल बताओ।
रुक जाओ ऐ जाने वालो! रुक जाओ, रुक जाओ॥

उनसे मिलनेकी आर्ज़ू पैहम ।
करवटें ले रही है सीने में ॥
आमदे-ईदकी हसीं उम्मीद ।
जैसे रमज़ानके महीनेमें ॥

नूरे-निकहतसे हमकनार है रात ।
कौन है, वजहे-शोरिशे-जज़्बात ?
गूँजते हैं दिले-मुहब्बतमें ।
उनकी नज़रोंके मुरतअश नग़मात ॥

महरे-ताबाँसे रोशनीके लिए ।
चाँद बा-आबो-ताब चढ़ता है ॥
जैसे इस्टेजपर कोई शाइर ।
दूसरोंका कलाम पढ़ता है ॥

नित नये ज़ख्म दिलके सीता हूँ ।
जीना मुश्किल है फिर भी जीता हूँ ॥
खा न जाये मुझे ग़मे - हस्ती ।
एहतियातन शराब पीता हूँ ॥

—बीसवीं सदी नवम्बर १९५६

'फ़िज़ा' जालन्धरी

समझ ही में नहीं आता मआले-कार[1] क्या होगा ।
दमे-अर्ज़े-तमन्ना[2] आज रुकती है, ज़बाँ मेरी ॥

१. परिणाम, २. इच्छाएँ प्रकट करते समय।

थामा तो है दुआने इलाही असरका हाथ।
ले जाये अब दुआको न जाने असर कहाँ?
अब भी उफ़क़मे-ताब-उफ़क़ है जमाले-दोस्त।
फ़रहाँ मगर निगाहे-हक़ीक़त-निगर कहाँ॥

—तहरीक अक्टूबर १९५४

'फाखिर' एजाजी

बे वफ़ा! आख़िर तुझे अब और क्या मंज़ूर है?
ज़ख्म जो दिलमें है, वह रिसता हुआ नासूर है॥
उसने इक दिन अपनी नज़रोंसे पिला दी थी शराब।
आज तक सरशार है दिल, आज तक मख़मूर है॥
बे झिजक रूए-मुनव्वरसे उठा दो तुम नक़ाब।
क्यों तअम्मुल है तुम्हें, यह दिल भी कोई तूर है॥
ऐ ख़ुशा! वह सर कि जिसको तेरा सौदा हो गया।
ऐ ज़हे! वह दिल कि जो ग़मसे तेरे मामूर है॥
मुनहसिर है तेरी मर्ज़ी पर मेरी मर्गो-हयात।
अब मुझे मंज़ूर है वह जो तुझे मंज़ूर है॥
इश्क़में इक रोज यह भी होगा क्या मालूम था।
दिल उन्हें भी भूल जानेके लिए मजबूर है॥
तूने सोचा क्या है, आख़िर ऐ दिले-ख़ाना ख़राब!
किस क़दर बर्बादियोंपर, इस क़दर मसरूर है॥
अल्लामाँ! बे इख्तियारी-ए-मुहब्बत अल्लामाँ।
इश्क़ तो मजबूर था, अब हुस्न भी मजबूर है॥

मअ़मियतकी शाहज़ादी यह कनीज़े-अहरमन।
जैसे फूलोंका जहन्नुम, जैसे काँटोंका चमन॥
दुश्मने - तस्कीने - जाँ ग़ारत गरे - सब्रो - शिकस्त।
एक ग़म-अफ़ज़ा हक़ीक़त एक दिल-ख़ुश-कुन फ़रेब॥
पैकरे - तहरीरमें इक क़िस्सए - नागुफ़्तनी।
सीधी सादी-सी इबारत और हर्फ़ोंकी बनी॥
उफ़ यह आदम ज़ाद-बे-परकी परी, अफ़सूँ शआ़र।
अपने आमिलको जो ख़ुद लेती है शीशेमें उतार॥
यह नगर अफ़रोज़ रुख़सारोंके बे सहबा ज़रूफ़।
यह ख़ते - गुलज़ारके पर्दोंमें काँटोंके हरूफ़॥
आह यह शानोंपै लहराते हुए ज़ुल्फ़ोंके नाग।
जिनके चलते लुट चुके हैं, कितनी बहनोंके सुहाग॥
हश्रज़ा अँगड़ाइयाँ नीची नज़र अन्फ़ास तेज़।
उफ़ यह अज़्मे-पेश दस्ती उफ़ यह मसनूई गुरेज़॥
देखकर गाहककी मतवाली निगाहोंका झुकाव।
तनका पीतल बेचती है, रातको सोनेके भाव॥
यह जवानीका चमन यह हुस्ने - सूरतका निखार।
मुनहसिर दो काग़ज़ी फूलोंपै है, जिसकी बहार॥
ज़र-ब-कफ़ मेहमाँकी जानिब दिल ब-कफ़ बढ़ती है यह।
मेज़बानीका लड़कपनमें सबक़ पढ़ती है यह॥
ख़िल्वतें - ग़मके अँधेरेमें उजाला मिल गया।
इसकी चाँदी है जो कोई सोनेवाला मिल गया॥
होंठपर क़ब्ज़ा जमाकर ज़ाहर-आर्गा प्यारसे।
काट लेती है यह जेबें आँसुओंकी धारसे॥

आह यह फ़ौलाद सीरत नुक़रई बाहोंका लोच।
मादा लोहोंको जो ऐय्यारीसे लेता है दबोच॥
उफ़ यह बिन ब्याही सुहागन, ज़िन्दातन मुर्दा ज़मीर।
मामियतका जैसे रंगीं बाहिमा सूरत पज़ीर॥
इक नज़रमें जेबकी तह तक पहुँच जाती है यह।
मालका अन्दाज़ा करके भाव बतलाती है यह॥
गीत सावनका नहीं नादाँ यह दीपक राग है।
ढल गया जब आँखका पानी तो औरत आग है॥

—आजकल मई १९५७

'फ़िज़ा' कौसरी

जिस दीदकी हसरतमें ऐ दिल ! इक उम्र बसर हो जाती है।
उस दीदका सामाँ होते ही बेकार नज़र हो जाती है॥
उम्मीद सहारा देती है, जब मायूसीके आलममें।
हर रातकी ज़ुल्मतमें पैदा तनवीरे-सहर जो जाती है॥
कलियाँ-सी चटकती हैं दिलमें, एहसास महकने लगता है।
फ़ैज़ाने-तसव्वुर क्या कहने, शादाब नज़र हो जाती है॥
यह इश्के-ख़राब अहवाल कभी एजाज़ दिखाता है यूँ भी।
कहता था ज़माना ऐब जिसे, वह बात हुनर हो जाती है॥
इस इक लम्हेमें क्या कहिए क्या दिलका आलम होता है।
जब मेरी फ़ुग़ाने-नीम-शबी मायूसे-असर हो जाती है॥
हर दर्द दिया करती है 'फ़िज़ा' आग़ाज़में उलझन ही दिलको।
उलझन ही बिल-आख़िर तस्कीने-हमदर्दे-जिगर हो जाती है॥

—शहाब अक्टूबर १९५१

'बाक़ी' सिद्दीक़ी

जो दुनियाके इल्ज़ाम आने थे आये।
बहुत ग़मके मारोंने पहलू बचाये॥
न दुनियाने थामा न तूने सम्भाला।
कहाँ आके मेरे क़दम डगमगाये॥
किसीने तुम्हें आज क्या कह दिया है।
नज़र आ रहे हो, पराये-पराये॥
मुलाक़ातकी कौन-सी है यह सूरत।
न हम मुसकराये न तुम मुसकराये॥
उलझते हैं हर गामपर ख़ार 'बाक़ी'।
कहाँ तक कोई अपना दामन बचाये॥

सफ़रका हौसला लाते कहाँसे।
इरादा करते-करते हो गई शाम॥
यह कैसी बेख़ुदी है, लिख गया हूँ।
मैं अपने नामके बदले तेरा नाम॥

—माहे नौ मार्च १६५३

आदाबे-चमन भी सीख लेंगे।
ज़िन्दोंसे अभी निकल रहे हैं॥
फूलोंको शरार कहनेवालो!
काँटोंपै भी लोग चल रहे हैं॥

'वासित' भोपाली

उस ज़ुल्मपै कुर्बां लाख करम, उस लुत्फ़पै सदक़े लाख सितम ।
उस दर्दके क़ाबिल हम ठहरे, जिस दर्दके क़ाबिल कोई नहीं ॥
क़िस्मतकी शिकायत किससे करें, वोह बज़्म मिली है हमको, जहाँ—
राहतके हज़ारों साथी हैं, दुःख दर्दमें शामिल कोई नहीं ॥

कुछ-न-कुछ हुआ आख़िर दौरे-आस्माँ अपना ।
ढूँढ़ने चले उनको मिल गया निशाँ अपना ॥

तौबा यह मंज़िले - दीवाने - मुहब्बत तौबा ।
वोह नहीं, मैं नहीं, नज़्ज़ारा नहीं, होश नहीं ॥

याँ यह वफ़ूरे-बे-ख़ुदी, वाँ वोह ग़रूरे-दिल्बरी ।
फ़िक्र किसे सवालकी, होश किसे जवाबका ॥

—निगार दिसम्बर १९४९

मुशाहदातकी मंज़िल है, ताहदे - इदराक ।
ख़िरद मकानमें है, मसलहतन गिरेबाँ चाक ॥
जहाने-नूरको देखा है, मैंने सर-ब-सजूद ।
जहाँ-जहाँसे नुमायाँ हुई हक़ीक़ते - ख़ाक ॥
तुम्हारे - हुस्ने - तमन्ना - तलबने क्या पाया ।
अगर निगाहे-मुहब्बत न हो सकी बेबाक ॥
अभी तक उससे सरिश्के-रवाने धो न सकी ।
कभी ख़ुशीने मली थी जो मेरे मुँहपर ख़ाक ॥
न पी सकें तो बहारे - चमनपै क्या इल्ज़ाम ।
मए-हयात तो छलकी रही है, ताक़-ब-ताक़ ॥

ख़िज़ाँसे शिकवः-ऐ-बरबादिए-चमन भी दुरुस्त।
मगर बहारने गुलशनमें जो उड़ाई ख़ाक॥
चमनमें हमने बनाया है, आशियाँ 'बासित'!
हमीं समझते है, कुछ कीमते-ख़सो-ख़ाशाक॥

—आजकल अक्टूबर १९५६

बिस्मिल आज़मी

ग़मे-दिलकी लाख सऊबते हों, मगर तू नाला-बलब न हो।
कोई आदमी है, वह आदमी जिसे ताबे-रंजो-तअब न हो॥
मुझे क्यों कशाकशे-ज़िन्दगीसे निजात मिल न सकी कभी।
तेरी दूरी हुस्ने-अज़ल! कहीं ग़मे-ज़िन्दगीका सबब न हो॥
मेरी ख़ुदसरी भी मुसल्लमा तेरी बरहमी भी बजा मगर।
सरे-हश्र जब्रकी दास्ताँ मैं कहूँ जो तर्क़े-अदब न हो॥
तुझे 'बिस्मिल' एक निगाहे-महरपै क्यों गरूर है इस क़दर?
तेरा हश्र क्या हो ख़बर भी है, वह निगाहे-महर जो अब न हो॥

—शाइर जून १९५१

'बिस्मिल' सईदी हाशमी

अन्दाज़े-जुनूँ इश्क़के अब जा नहीं सकते।
तुम भी दिले-बेताबको समझा नहीं सकते॥

अब दिलसे किसी वक़्त उभर आते हैं 'बिस्मिल'।
वोह अश्क जो आँखोंमें नज़र आ नहीं सकते॥
हर बुलन्दो-पस्तको इस तरह ठुकराता हूँ मैं।
कोई यह समझे कि जैसे ठोकरें खाता हूँ मैं॥

तुम अपने क़ौल, तुम अपने क़रार याद करो।
और उनपै फिर मेरा वोह एतबार याद करो॥

भुला चुके मो भुला ही चुके वोह अब 'बिस्मिल'।
हज़ार याद दिलाओ हज़ार याद करो॥

उनके फरेबे-लुत्फ़के दिन भी गुज़र गये।
अब मुतमइन है, अपने ग़मे-मौतबरसे हम॥

बैठें तो किस उम्मीदपै, बैठे रहें यहाँ?
उट्ठें तो उठके जाएँ कहाँ तेरे दरसे हम?

दुहराई जा सकेगी न अब दास्ताने-इश्क़।
कुछ वोह कहींसे भूल गये है कहींसे हम॥

'बिस्मिल' शाहजहाँपुरी

खुदा मालूम? मूसा तूरसे क्यों बेक़रार आये?
मेरी मंज़िलमें ऐसे मरहले तो बेशुमार आये॥

वोह साकी जिसकी आँखोंपर फरिश्तोंको भी प्यार आये।
अगर नज़रें उठा दे चश्मे-फितरतमें खुमार आये॥

बिहार कोटी

कफस बर्कोशररकी ज़दसे बाहर ही सही लेकिन।
गुलिस्ताँ फिर गुलिस्ताँ है, नशेमन फिर नशेमन है॥

वहाँ हजारों बहिश्तें भी है खुदा - बन्दा!
सिसक-सिसकके कटी जिन्दगी जहाँ मेरी॥

दीवानगी[1] है यह जनूने-शौक़की वारफ़्तगी[2] ।
पूछते हैं अपनी मंज़िलका पता मंज़िलसे हम ॥
अब कहाँ वह नग़मे-हाए साज़े-हस्तीका[3] फ़सूँ ।
चौंक उठे 'मसरूर' आवाज़े-शिकस्ते-दिलसे[4] हम ॥

—तहरीक अगस्त १९५५

ग़म-ए-जुनूँ जगाओ कि राहे-हयातपर ।
अब गुम रहाने-अक़्लको कुछ सूझता नहीं ॥

न अम्न है, न मर्ग है, न चारए-ग़म है ।
तुम्हारी बज़्मे-तरबका अजीब आलम है ॥
यह सर ज़मीं कि जिसे रश्के-ख़ुल्द[5] कहते हो ।
ख़ुदा मुआफ़ दहकता हुआ जहन्नुम है ॥

—तहरीक अगस्त १९५६

पैराफ़

आज फिर दिलमें तेरी याद उभर आई है ।
गर्द पलकोंपे गुज़रता हुआ आँसू बनकर ॥

एक मुद्दतसे निगाहोंसे शरारे ग़मके ।
मैंने ख़ाकिस्तरे-आरज़ोंमें दबा रक्खे थे ॥
तेरी पायलके दिये, तेरी नमसाके चिराग़ ।
वक़्तकी तुन्द हवाओंने बुझा रक्खे थे ॥

१. दीवानापन, २. उन्मादका दौर, ३. जीवन-संगीतका माधुर्य, ४. दिल टूटनेकी आवाज़से ५. [illegible] [illegible]

'मख़मूर' देहलवी

हजूमे-यासमें अश्कोंने आबरू रखली।
उन्हींसे दिलकी लगीको बुझा लिया मैंने॥
यह कायनात जिसे सुनके झूम-झूम गई।
वह नग़मा सोज़-मुहब्बतपै गा लिया मैंने॥
बहुत ही दिलके अँधेरेसे दम उलझता था।
चिराग़े-दाग़े-मुहब्बत जला लिया मैंने॥
उस आस्ताँकी बलन्दीका क्या ठिकाना है।
बसद नियाज़ जहाँ सर झुका लिया मैंने॥
मैं उसके वादेका अब भी यक़ीन करता हूँ।
हज़ार बार जिसे आज़मा लिया मैंने॥
कोई समझ न सका मुझपै क्या गुज़रती है।
कुछ इस तरहसे तेरा ग़म छुपा लिया मैंने॥
सिवाये दाग़े-तमन्ना किसीको कुछ न मिला।
कोई बताये कि दुनियासे क्या लिया मैंने॥
ग़मे-हयातसे 'मख़मूर' लोग डरते हैं।
इसे तो अपनी तमन्ना बना लिया मैंने॥

बीसवीं सदी अप्रैल १९५६

'मज़र' सिद्दीक़ी अकबराबादी

जी सके इन्सान बेख़ौफ़ो-ख़तर ऐसा तो हो।
हो अगर नज़्मे-निज़ामे बहरो-बर ऐसा तो हो॥
हुस्न भी हो माइले-परवाज़ सहराकी तरफ़।
कम-से-कम इक मौसमे-दीवानागर ऐसा तो हो॥

—शाइर जनवरी १९४३

सब उनको देखते हैं, मुझे देखनेके बाद।
कुछ और कह न दे यह मेरी चश्मे-तर[1] कहीं॥
मुझको यह लज़्ज़ते-ख़लिशे-दिल[2] हराम हो।
मैंने तुम्हारा नाम लिया हो अगर कहीं॥
वह और तुझको लज़्ज़ते-आज़ार[3] बख़्श दें।
यह भी न हो 'मशीर' फ़रेबे-नज़र[4] कहीं॥

—निगार अगस्त १९५४

बदल सकता हूँ उसका रुख़, मगर यह सोचकर चुप हूँ।
तुम्हारा नाम लेकर गर्दिशे-ऐयाम[5] आती है॥

—निगार नवम्बर १९५१

'मजाज़ लोदी अकबराबादी

यह राहे-मुहब्बत है धोका न खाना।
कदम जो उठाना सम्भलकर उठाना॥
अगर ख़ुदनुमाईसे फ़ुरसत कभी हो।
मेरे ग़मकदेमें भी तशरीफ़ लाना॥

'महशर'

मुद्दतें हो गईं है चुप रहते।
कोई कहता तो हम भी कुछ कहते॥

---

१ अश्रु पूर्ण आँखें, २. हृदयमें चुभनका आनन्द, ३. दुःख सहनेमें जो आनन्द आता है, ४. आँखोंका धोका, ५. ससारकी विपदाएँ।

मत उनको देखते है, मुझे देखनेके बाद।
कुछ और कह न दे यह मेरी चश्मे-तर[1] कहीं॥
मुझको यह लज्जते-ख़लिशे-दिल[2] हराम हो।
मैंने तुम्हारा नाम लिया हो अगर कहीं॥
वह और तुझको लज्ज़ते-आज़ार[3] बख्श दें।
यह भी न हो 'मशीर' फ़रेबे-नज़र[4] कहीं॥

—निगार अगस्त १९५१

बदल सकता हूँ उसका रुख़, मगर यह सोचकर चुप हूँ।
तुम्हारा नाम लेकर गर्दिशे-ऐयाम[5] आती है॥

—निगार नवम्बर १९५१

''मजाज लोदी अकबरावादी

यह राहे-मुहब्बत है धोका न खाना।
क़दम जो उठाना सम्भलकर उठाना॥
अगर खुदनुमाईसे फुरसत कभी हो!
मेरे गमकदेमें भी तशरीफ लाना॥

'महशर'

मुद्दतें हो गईं है चुप रहते।
कोई कहता तो हम भी कुछ कहते॥

---

१ अश्रु पूर्ण आँखें, २. हृदयमें चुभनका आनन्द, ३. दुःख सहनेमें जो आनन्द आता है, ४. आँखोंका धोका, ५. संसारकी विपदाएँ।

सदायें ज़हनकी पिन्हाइयोंमें गूँजती हैं।
खिज़ाँके साये झलकते है, तेरी आँखोंमें ॥
तेरी निगाहोंमें रफ्ता बहारोंका ग़म है।
हयात ख्वाबगाहोंमें पनाह ढूँढ़ती है ॥

फ़सुर्दा लमहे ख़लाओंमें रंग भरते है।
यह गर्दिशे-महो-साल आजमा चुकी है जिन्हें ॥
यह गर्दिशे महो-साल आज़मा रही है हमें।
मगर यह सोच कि अंजामकार क्या होगा ॥
दवाम तेरा मुक़द्दर है, और ना मेरा नसीब।
दवाम किसको मिला है, जो हमको मिल जाता ?
यह चन्द लमहे अगर जाविदाँ न हो जाते।
मैं सोचता हूँ कि अपना निशान क्या होता ?
कहाँ यह टूटता जब्रे - हयातका अफसूँ।
कहाँ पहुँचके ख़यालोंको आसरा मिलता ?

—तहरीक अक्टूबर १९५४

अह्ले-महफ़िल अभी शाइस्त-ए-ऐय्याम नहीं।
आगही आम है, अन्दाज़े-जुनूँ आम नहीं ॥
बज़्मे-मस्तीसे है यक गाम ब-मंज़िल गहे-होश।
तेरे मस्तोंको मगर फुर्सते-यक गाम नहीं ॥
एक मुद्दत हुई हर रिश्तए-दिल टूट गया।
आज वह सिलसिलए नाम-ओ-पैग़ाम नहीं ॥
मेरी नज़रोंमें है, सद् जल्वए-कौनैनके राज़।
इश्क़का ज़ौक़े-नज़र सिर्फ़ दरो-बाम नहीं ॥

मैं भी हूँ शाहिदे-ऐय्यामके इश्वोंका क़तील।
मेरे होंटोंपे मगर शिकवए-ऐय्याम नहीं॥

—तहरीक नवम्बर १९५४

कितने अरमानोंसे चाहा है, तुम्हें,
दिले बेताबमें आकर देखो।
बज़्ममें तावे-नज़र किसकी है,
तुम सरे-बज़्म तो आकर देखो॥

—तहरीक मई १९५६

'माजिद' हसन फरीदी

यास कुछ इस तरहसे छाई है।
मौत भी हमपे मुसकराई है॥
आज वह ख़ुद हैं, माइले-दरमाँ।
दर्दे - हिजराँ तेरी दुहाई है॥
रात अश्कोंके साथ दामनपर।
मैंने तस्वीर दिलकी पाई है॥
फिर वही वहशतें, वही रौनक़।
फिरसे शायद बहार आई है॥
अपने दामनकी धज्जियाँ करके।
मैंने गुलकी हँसी उड़ाई है॥
दिलकी वुसअ़तको पूछते हो क्या!
इसमें कौनैनकी समाई है॥

सद्क़ए - हुस्नका भिकारी हूँ।
दिल है या कास - ए - गदाई है॥
देखकर दिलको अपनी नजरें देख।
किसपै इल्ज़ामे - बे - वफ़ाई है।
शमअ्-गुल, वह भी चुप, उदास फ़िज़ा।
आज 'माजिद'ने मौत पाई है॥

—तहरीक नवम्बर १९५४

'माहिर' इकबाल

नज़्म

चाहता हूँ कि मैं ग़ुरबतमें भी जाकर न सुनूँ।
कि मुसाफ़िरकी हज़ां यादमें नाशाद है तू॥
खुश हो अब टूट गया सिलसिलए-इश्क़ो-जुनूँ।
शाद हो कशमकशे-शौक़से आज़ाद है तू॥
होके मैं फ़र्ज़से मजबूर चला जाऊँगा।
तुझसे ऐ दोस्त! बहुत दूर चला जाऊँगा॥

—शाइर जुलाई १९४७

मुअल्लिस भटकली

तौबा-तौबा

मआले - बहारे - चमन तौबा - तौबा।
खिज़ाँ-दीदा सरु-ओ-समन तौबा-तौबा॥
खुदाको तो दैरो - हरममें बिठाया।
खुदा बन गये अहरमन तौबा-तौबा॥

'मुशफ़िक' ख़्वाजा

हँसनेवाले तो हज़ारों थे मगर हमको मिला।
रौनके - अंजुमने - दीदाए-तर[1] एक ही शख़्स॥
पुरशिशे-हालको[2] आते हैं, हज़ारों यूँ तो।
दिलकी बेताबीका बाइस[3] है मगर एक-ही शख़्स॥
कितने चहरे थे कि था जिनसे तअल्लुक़ अपना।
फिर भी याद आया हमें ज़िन्दगी भर एक ही शख़्स॥
हर हसीं शैको बड़े ग़ौरसे देखा हमने।
सामने आया ब-उनवाने-दिगर[4] एक ही शख़्स॥
दरे-मैख़ानापै 'मुशफ़िक' तो नहीं था शायद।
हमने देखा है, वहाँ ख़ाक-बसर[5] एक ही शख़्स॥

—तहरीक जनवरी १९५७

'मूनिस' इटावी

कोई मश्के-जफ़ापर[6] अपनी नाज़ाँ[7]।
कोई दानिस्ता धोका खा रहा है॥
तेरे ग़ममें गुज़रना ज़िन्दगीका।
बहुत आसान होता जा रहा है॥

---

१. अश्रुपूर्ण आँखोंसे जलसेकी शोभा बढ़ानेवाला, २. तबियतकी हालत पूछने, ३. कारण, ४. बड़े-बड़े शीर्षकोंकी तरह, ५. ख़ाकपर लोटता हुआ, ६. अत्याचारोंके अभ्यासपर, ७. अभिमानी।

'मैकश' अकबरावादी

ब-अन्दाजे-नसीम[1] आये, ब-उनवाने-बहार[2] आये।
वोह अपने वाद-ए-फ़र्दाका[3] बनकर एतबार आये॥
चिराग़ो-कुश्ता[4] लेकर हम तेरी महफ़िलमें क्या आये।
जो दिन थे ज़िन्दगीके वह तो रस्तेमें गुज़ार आये॥
खिज़ाँमें आये, बैठे ख़ाके-गुलपर, सोये काँटों पर।
सलाम अपना भी कह देना जो गुलशनमें बहार आये॥
यह जब्रो-इख़्तियारे-इश्क़ है तुम इसको क्या समझो।
रहेगा दिलपै कब क़ाबू जो तुम पर इख़्तियार आये॥
यह दुनिया मेरी हस्ती है, यह हस्ती मेरी दुनिया है।
अगर तुझको क़रार आये तो दुनियाको क़रार आये॥

यह माना ज़िन्दीमें ग़म बहुत हैं,
हँसे भी ज़िन्दगीमें हम बहुत हैं।
नहीं है, मुनहसिर कुछ फ़स्ले-गुलपर,
जुनूँके और भी मौसम बहुत हैं॥

हज़ार सुबहें शबे-इन्तज़ारमें देखीं।
कि जो चिराग जलाया वही बुझा डाला॥

'मैराज' लखनवी

वही उजड़ी हुई रातें, वही उजड़े हुए दिन।
और 'मैराज' की तक़दीरमें क्या रक्खा है॥

---

१. मृदु पवनकी तरह, २. बहारकी तरह, ३. भविष्यके वादेका, ४. बुझा दीपक (जर्जर शरीर)।

'रागिब' मुरादाबादी

खुश वोह दिन जो तेरी आर्ज़ूमें ख़त्म हुआ।
ख़ुशे वोह शब जो तेरे इन्तज़ारमें गुज़री॥

उसी चमनमें हूँ 'रागिब'! उमीदवारे-बहार।
खिज़ाँ जहाँसे लिबासे - बहारमें गुज़री॥

'राज़' चाँदपुरी

न सोज है तेरे दिलमें, न साज़ फितरतमें।
यह ज़िन्दगी तो नहीं, ज़िन्दगी हक़ीकतमें॥
जो बुल्हविस थे, वोह गुमराह हो गये आख़िर।
अकेला रह गया, मैं मंज़िले-मुहब्बतमें॥

परवाने ख़ुदग़रज़ थे कि ख़ुद जलके मर गये।
एहसासे-सोज़े-शमए - शबिस्ताँ न कर सके॥

जानता हूँ बता नहीं सकता।
ज़िन्दगी किस तरह हुई बरबाद॥

—शाइर नवम्बर १९४३

वह दैरो-चश्त हो, कि बिरहमन, ख़ुदा गवाह।
रहबर बनाऊँगा न किसी कमनज़रको मैं॥

—शाइर सालनामा १९५१

'राज़' रामपुरी

नियाज़े-इश्क़में ख़ामी कोई मालूम होती है।
तुम्हारी बरहमी क्यों बरहमी मालूम होती है?

दिल चुरानेकी अबस उनसे शिकायत कर दी।
अब वोह आँखें भी चुराते हैं पशेमाँ होकर ॥

अपनी हस्तीसे दुश्मनी थी मुझे।
याद है उनसे दोस्तीके दिन ॥

वोह सामने सरे-मंज़िल चिराग़ जलते हैं।
जवाब पाँव न देते तो मैं कहाँ होता ?

महसूस हो रहा है कि गुम हो रहा हूँ मैं।
किस सिम्त आ गया, तुझे मैं ढूँढ़ता हुआ ?

हर-इक शयसे जवानी उबल पड़ी आख़िर।
मेरी नज़रसे कहाँ तक कोई हिजाब करे ॥

ज़िन्दा रहना न सिखाओ लेकिन—
जान देना तो बता दो हमको ॥

सब और मैं, ख़ैर इसका ज़िक्र क्या ?
जा रहे हैं आप, अच्छा जाइए ॥

इन आँसुओंकी हक़ीक़तको कौन समझेगा।
कि जिनमें मौत नहीं, ज़िन्दगीका मातम है ॥

उसकी हसरत ? अरे मुआज़ल्ला।
जिसका चाहा हुआ, कभी न हुआ ॥

फ़ुर्सते-अर्ज़े - मुहब्बत न मिली, ख़ूब हुआ।
आप सुनते भी तो, क्या आपसे कहता कोई ॥

—निगार अक्टूबर १९४५

'राग़िब' मुरादाबादी

खुशा वोह दिन जो तेरी आर्ज़ूमें ख़त्म हुआ।
ज़हे वोह शब जो तेरे इन्तज़ारमें गुज़री॥

उसी चमनमें हूँ 'राग़िब'! उमीदवारे-बहार।
ख़िज़ाँ जहाँसे लिबासे - बहारमें गुज़री॥

'राज़' चाँदपुरी

न सोज़ है तेरे दिलमें, न साज़ फ़ितरतमें।
यह ज़िन्दगी तो नहीं, ज़िन्दगी हक़ीक़तमें॥
जो बुल्हविस थे, वोह गुमराह हो गये आख़िर।
अकेला रह गया, मैं मंज़िले-मुहब्बतमें॥

परवाने ख़ुदग़रज़ थे कि ख़ुद जलके मर गये।
एहसासे-सोज़े-शमए - शबिस्ताँ न कर सके॥

जानता हूँ बता नहीं सकता।
ज़िन्दगी किस तरह हुई बरबाद॥

—शाइर नवम्बर १९४३

[illegible]-चमन हो, कि बिरहमन, ख़ुदा गवाह।
[illegible]ऊँगा न किसी कमनज़रको मैं॥

—शाइर सालनामा १९५१

[illegible] राम

[illegible] गामी कोई मालूम होती है।
[illegible] मालूम होती है?

यूँ न बिखराओ अपनी ज़ुल्फ़ोंको ।
मुँह छुपाती फिरेगी रात कहाँ ?
वह तो आँसू निकल पड़े वर्ना ।
मैं कहाँ शरहे - वाक़ियात कहाँ ॥
उनको एहसास हो चला है 'रईस' ।
वह नज़र, वह हँसी, वह बात कहाँ ॥

'रज़ा' क़ुरैशी

यूँ लिये बैठा हूँ दिलमें उनकी हसरतके निशाँ ।
जैसे पीछे छोड़ जाये गर्द कोई कारवाँ ॥

कुछ मेरी नज़रने उठके कहा, कुछ उनकी नज़रने झुकके कहा ।
झगड़ा जो न चुकता बरसोंमें तै हो गया बातों - बातोंमें ॥

'रफ़अत' सुल्तानी

तुम्हारी यादका है, फ़ैज़ वर्ना ।
हमारी सुबह क्या है, शाम क्या है ?

'रसाँ' बरेलवी

आग़ाज़ ही में लुट गया, सरमायए-निशात ।
अंजामे - आर्ज़ू पै नज़र क्या करेंगे हम ॥
गहन 'रसाँ' है इश्क़में हम क़ाबिले-हयात ।
क्यों तुमसे इल्तजाए-मदावा करेंगे हम ॥

—निगार मार्च १९४८

'यकताँ' देसराज

क़दम-क़दमपै मुहब्बतने पाँव रोके थे।
वतनको छोड़के आना कोई मज़ाक़ नहीं॥

यावर अली

फिर दिलको ग़मकी आँच दिये जा रहा हूँ मैं।
जीना है गो अज़ाब, जिये जा रहा हूँ मैं॥
तुम पास ही नहीं तो मज़ा ज़िन्दगीका क्या।
जीता नहीं हूँ साँस लिये जा रहा हूँ मैं॥
रुस्वाइयोंमें दस्तो-गरेबाँ है दर्दे-दिल।
रोता नहीं कि अश्क पिये जा रहा हूँ मैं॥
आयेगा दिन कि याद करोगी मुझे यूँ ही।
जिस तरह तुमको याद किये जा रहा हूँ मैं॥

'रईस' रामपुरी

उनको मालूम ही यह बात कहाँ।
दिन कहाँ काटता हूँ, रात कहाँ॥
हमको तक़दीर ही कहा जाये।
मैं कहाँ उनका इल्तफ़ात कहाँ॥
जिनके आगे ज़बाँ भी हिल न सके।
कहने बैठा हूँ दिलकी बात कहाँ॥
सोच सकता हूँ यह नहीं सकता।
लुट गई दिलकी क़ायनात कहाँ॥

यूँ न बिखराओ अपनी ज़ुल्फ़ोंको।
मुँह छुपाती फिरेगी रात कहाँ?
वह तो आँसू निकल पड़े वर्ना।
मैं कहाँ शरहे-वाक़ियात कहाँ॥
उनको एहसास हो चला है 'रईस'।
वह नज़र, वह हँसी, वह बात कहाँ॥

'रज़ा' क़ुरैशी

यूँ लिये बैठा हूँ दिलमें उनकी हसरतके निशाँ।
जैसे पीछे छोड़ जाये गर्द कोई कारवाँ॥

कुछ मेरी नज़रने उठके कहा, कुछ उनकी नज़रने झुकके कहा।
झगड़ा जो न चुकता बरसोंमें तै हो गया बातों-बातोंमें॥

'रफ़अत' सुल्तानी

तुम्हारी यादका है, फ़ैज़ वर्ना।
हमारी सुबह क्या है, शाम क्या है?

'रसाँ' बरेलवी

आग़ाज़ ही में लुट गया, सरमायए-निशात।
अंजामे-आर्ज़ू पै नज़र क्या करेंगे हम॥
राहत 'रसाँ' है इश्क़में हर काविशे-हयात।
क्यों तुमसे इल्तजाए-मदावा करेंगे हम॥

—निगार मार्च १९४८

'राग़िब' मुरादाबादी

खुशा वोह दिन जो तेरी आर्ज़ूमें ख़त्म हुआ।
जहे वोह शब जो तेरे इन्तज़ारमें गुज़री॥

उसी चमनमें हूँ 'राग़िब'! उमीदवारे-बहार।
खिज़ाँ जहाँसे लिबासे - बहारमें गुज़री॥

'राज़' चाँदपुरी

न सोज है तेरे दिलमें, न साज फितरतमें।
यह ज़िन्दगी तो नहीं, ज़िन्दगी हक़ीक़तमें॥
जो बुलहविस थे, वोह गुमराह हो गये आखिर।
अकेला रह गया, मैं मंज़िले-मुहब्बतमें॥

परवाने ख़ुदगरज़ थे कि खुद जलके मर गये।
एहसासे-सोज़े-शमए - शबिस्ताँ न कर सके॥

जानता हूँ बता नहीं सकता।
ज़िन्दगी किस तरह हुई बरबाद॥

—शाइर नवम्बर १९४३

वह शैख़े-वक़्त हो, कि बिरहमन, ख़ुदा गवाह।
रहबर बनाऊँगा न किसी कमनज़रको मैं॥

—शाइर सालनामा १९५१

'राज़' रामपुरी

नियाज़ो-इश्क़में ख़ामी कोई मालूम होती है।
तुम्हारी बरहमी क्यों बरहमी मालूम होती है?

दिल चुरानेकी अबस उनसे शिकायत कर दी।
अब वोह आँखें भी चुराते हैं पशेमाँ होकर॥

अपनी हस्तीसे दुश्मनी थी मुझे।
याद हैं उनसे दोस्तीके दिन॥

वोह सामने सरे-मंज़िल चिराग़ जलते हैं।
जवाब पॉव न देते तो मैं कहाँ होता?

महसूस हो रहा है कि गुम हो रहा हूँ मैं।
किस सिम्त आ गया, तुझे मैं ढूँढ़ता हुआ?

हर-इक शयमें जवानी उबल पड़ी आख़िर।
मेरी नज़रसे कहाँ तक कोई हिजाब करे॥

ज़िन्दा रहना न सिखाओ लेकिन—
जान देना तो बता दो हमको॥

सब्र और मैं, ख़ैर इसका ज़िक्र क्या?
जा रहे हैं आप, अच्छा जाइए॥

इन आँसुओंकी हक़ीक़तको कौन समझेगा।
कि जिनमें मौत नहीं, ज़िन्दगीका मातम है॥

उसकी हसरत? अरे मुआज़ल्ला।
जिसका चाहा हुआ, कभी न हुआ॥

फ़ुर्सते-अर्ज़े - मुद्दआ न मिली, ख़ूब हुआ।
आप सुनते भी तो, क्या आपसे कहता कोई॥

—निगार अक्टूबर १६४५

'राग़िब' मुरादाबादी

ख़ुशा वोह दिन जो तेरी आर्ज़ूमें ख़त्म हुआ।
जहे वोह शब जो तेरे इन्तज़ारमें गुज़री॥

उसी चमनमें हूँ 'राग़िब'! उमीदवारे-बहार।
खिज़ाँ जहाँसे लिबासे - बहारमें गुज़री॥

'राज़' चाँदपुरी

न सोज है तेरे दिल्में, न साज फ़ितरतमें।
यह ज़िन्दगी तो नहीं, ज़िन्दगी हक़ीक़तमें॥
जो बुल्हविस थे, वोह गुमराह हो गये आख़िर।
अकेला रह गया, मैं मंज़िले-मुहब्बतमें॥

परवाने ख़ुदगरज़ थे कि ख़ुद जलके मर गये।
एहसासे-सोज़े-शमए - शबिस्ताँ न कर सके॥

जानता हूँ बता नहीं सकता।
ज़िन्दगी किस तरह हुई बरबाद॥

—शाइर नवम्बर १९४३

वह शैख़े-वक़्त हो, कि बिरहमन, ख़ुदा गवाह।
रहबर बनाऊँगा न किसी कमनज़रको मैं॥

—शाइर सालनामा १९५१

'राज़' रामपुरी

नियाज़े-इश्क़में ख़ामी कोई मालूम होती है।
तुम्हारी बरहमी क्यों बरहमी मालूम होती है?

'रोशन' देहलवी

तुम्हारे हुस्नकी महफ़िलमें आये इसतरह आशिक़ ।
कुछ आये इनवीटेशनसे, कुछ आये एजीटेशनसे ।
वोह होंगे और जिनको वस्ल इस मौसममें हासिल है ।
यहाँ तो शाल सरदीमें रहा करता है लिपटनसे ॥

'रौनक' दकनी

ग़मे-हयातको दुनियापै आशकार न कर ।
यह एक राज़ है, ज़िक्र इसका बार-बार न कर ॥
मुहब्बत और जफाओंका ज़िक्र क्या माने ?
कभी शुमार सितमहाए- बेशुमार न कर ॥
अमलकी राहमें होती है मुश्किलें पैदा ।
किसीको अपने इरादेका राज़दार न कर ॥

'लतीफ' अनवर गुरुदासपुरी

मैं जानता हूँ तेरे ग़मकी मसलहत लेकिन ।
कमी-कमीकी मसर्रत भी साज़गार नहीं ॥

दिल मुज़तरिब, निगाह परीशाँ, फ़िज़ा उदास ।
गोया तेरा ख़याल क़यामतसे कम नहीं ॥

हाय क्या शै है, वफ़ाका ज़ौक़ अहदे-इश्क़में ।
ख़ुद समझता हूँ, मगर समझा नहीं सकता हूँ मैं ॥

अब हमें कोई पूछता ही नहीं ।
जैसे हम साहबे-वफ़ा ही नहीं ॥

'राज़' यज़दानी

सज़ाको झेलनेवाले यह सोचना है गुनाह।
कोई क़सूर भी तुझसे कभी हुआ कि नहीं॥
वफ़ा तो ख़ैर बड़ी चीज़ है, मैं सोचता हूँ कि वोह।
जफ़ाकी भी कभी ज़हमत उठायेगा कि नहीं॥

निसारे-जलवा दिलो-दीं ज़रा नक़ाब उठा।
वह एक लमहा सही, एक लमहा क्या कम है॥

अगर सकून वही दो जहाँको देता है।
तो कुछ समझके बनाया है बेक़रार मुझे॥
अजब करम है कि बे-इख़्तियारियाँ देकर।
अता किया है दो आलमपै इख़्तियार मुझे॥

'राही' रामसरनलाल

कुछ ठंडी साँसें होती हैं, अश्कोंमें रवानी होती है।
पूछे तो कोई मेरे दिलसे क्या चीज़ जवानी होती है?

दुनियाके चलनको क्या कहिए, जो चीज़ है फ़ानी होती है।
बरसो जो हक़ीक़त रहती है, इक रोज़ कहानी होती है॥
इक ठेस लगी, काँटा-सा चुभा, कुछ दर्द हुआ, आँसू टपके।
बरबाद मुहब्बतकी अक्सर ऐसी ही कहानी होती है॥

—आजकल मार्च १९५१

'लुत्फ़ी' रिज़वाई

कभी ख़याल, कभी वनके वर्क़े-तूर आये।
जब उनको याद किया सामने ज़रूर आये॥

यह क्या कि सुबहको नाले हैं शामको आहें।
कभी तो सब्र तुझे क़ल्बे-नासबूर आये॥
निगाहे-शौक़ न होनी थी, मुतमइन न हुई।
अगर्चे राहे-तलबमें हज़ार नूर आये॥
अजीब हाल है कुछ तुमपै, मिटनेवालोंका।
कि जितना सोज़ बढ़े उतना मुँहपै नूर आये॥
नज़र किसीकी नदामतसे क्या झुकी 'लुत्फ़ी'।
कि याद मुझको खुद अपने ही सब क़सूर आये॥

—निगार सितम्बर १९४०

'वफ़ा' बराही

यूँ तड़प इश्क़में दिले-मुज़तर!
सारी दुनिया तड़पके रह जाये॥

जान देनेका जब इरादा किया।
तुम मेरे सामने चले आये॥

निदा़मत बादाकश हैं कुछ ऐसे कि जैसे—
गुनाहोंको यह बख़्शवाये हुए हैं॥

'गफ़ूर' टोंकी

निज़ाँ अब आयगी तो आयेगी ढलकर बहारोंमें।
कुछ इस अन्दाज़से नज़्मे-गुलिस्ताँ कर रहा हूँ मैं॥

हर नाला रफ़्ता-रफ़्ता दुआतक पहुँच गया।
बन्देसे वास्ता था, ख़ुदा तक पहुँच गया॥

न कोई जादा, न कोई मंज़िल, न कोई रहबर, न कोई रहज़न।
क़दम-क़दमपर हज़ार ख़दशे न जाने क्या है, न जाने क्या हो॥

फ़ितरतका इशारा है, यहाँ गिरयए-शबनम।
हँसते हुए फूलोंको ख़िज़ाँ याद नहीं है॥

शायद ग़मे-हयात ही था मक़सदे-हयात।
क्यों वरना इम्बसातसे महरूम कर दिया॥

ज़मानेका शिकवा न कर रोनेवाले।
ज़माना नहीं साथ देता किसीका॥

तुझे कबसे पुकारता हूँ मैं।
क्या तुझे फ़ुर्सते-जवाब नहीं?

ज़िक्रे-बहार, फ़िक्रे-ख़िज़ाँ, रंजे-बेकसी।
तरतीबे-आशियाँका तक़ाज़ा नज़रमें है॥

कई पर्दे उठाये जा चुके हैं रूए-हस्तीसे।
मगर हर-एक पर्दा, एक पर्देका तक़ाज़ा है॥

इज़्तराबे-ग़म सिखाता जायगा।
रफ़्ता-रफ़्ता दिलको आदाबे-हयात॥

—शाइर जनवरी १९४९

साक़ी-ओ-मुतरिब आये, जाम आये, सुबू आये।
आना था जिनको वोही न आये तमाम रात॥
ऐसे कहाँ नसीब शबे - माहतावमें।
वोह आयें और आके न जायें तमाम रात॥
वोह क्या गये कि नींद भी आँखोंसे ले गये।
यानी वह ख्वाबमें भी न आये तमाम रात॥
ऐसे वोह बे ख़बर तो न थे मुझसे बज़्ममें।
बैठे रहे निगाह झुकाये तमाम रात॥

'शमीम' क़ैसर

टूटे सपने

एक तुम्हें पानेकी ख़ातिर नींद गँवाई, चैन गँवाया।
तुमको अपने दिलमें बसाकर जीको कैसा रोग लगाया?
आँसूके कुछ मोती चुनकर सपनोंकी मालाएँ गूँथीं।
प्रेमकी उन मालाओंको भी हँस-हँसकर तुमने ठुकराया॥
प्यार भरी मुसकानकी भिक्षा माँग रहा था कबसे जोगी।
तुमने इस जोगीको अपने द्वारसे ख़ाली हाथ फिराया॥
तुमने सजाई थी फुलवारी रंग-बिरंगे फूल थे जिसमें।
उन फूलोंका रूप दिखाकर मुझको काँटोंमें उलझाया॥
आज मेरे जीवनके पथपर छाया है घनघोर अँधियारा।
मेरा मन कुछ लूटनेवाले, तुमने मुझे किस राह लगाया?
जाने कब तक जीवन-पथपर यूँ ही भटकना रहना होगा।
इतनी लम्बी राहमें अबतक कोई अपने साथ न आया॥

—शमअ फरवरी १९५८

बड़ी मुश्किलसे आता है मयस्सर ज़िन्दगी भरमें।
वोह इक लमहा जिसे इन्साँ गुज़ारे शादमाँ होकर॥
इन्हीं ज़र्रोंसे कल होंगे नये कुछ कारवाँ पैदा।
जो ज़र्रे आज उड़ते हैं, गुबारे-कारवाँ होकर॥

थीं जो कल तक कश्ति-ए-उम्मीदको थामे हुए॥
रुख़ बदल कर आज वोह मौजें भी तूफ़ाँ हो गईं।

अब इस फ़िक्रमें रात-दिन कट रहे हैं।
तुझे भूल जायें कि ख़ुदको भुला दें॥

—शाइर अक्तूबर १९४६

'शबनम' इकराम

दस्ते - साक़ीसे जाम लेता हूँ।
अक़्लसे इन्तक़ाम लेता हूँ॥
दौड़ पड़ते हैं, सारे दीवाने।
जब बहारोंका नाम लेता हूँ॥
तेरी आँखोंके इक इशारेसे।
जाने कितने पयाम लेता हूँ॥
यह भी इक मस्लहत है ऐ 'शबनम'!
सादगीसे जो काम लेता हूँ॥

'शमीम' जयपुरी

अव्वल तो यह कि नींद न आये तमाम रात।
फिर उसपर उनकी याद सताये तमाम रात॥

'शहाब'

न मिला हमें कुछ गदा होकर।
न दिया तूने कुछ ख़ुदा होकर॥
ऐ बुतो आज़माके देख लिया।
न हुए तुम ख़ुदा, ख़ुदा होकर॥

'शहीद' बदायूनी

इतना ज़रूर है कि सकूँ तो न मिल सका।
लेकिन तेरे बग़ैर भी रातें गुज़र गईं॥

वोह सम्भले हुए थे, मगर थे फ़सुर्दा।
न आया उन्हें मुझसे दामन बचाना॥

एहसास तो ज़रूर था लेकिन बहारमें।
हम एहतियाते-जेबो-गरेबाँ न कर सके॥

सुनके कल महफ़िलमें ज़िक्रे-हुस्ने-दोस्त।
हम भी कुछ आँसू बहाकर रह गये॥

जलते तो थे चिराग़ मगर रोशनी न थी।
तुम आ गये तो रौनके-काशाना हो गई॥

हँसी आ गई उनकी बेगानगी पर।
वोह गुज़रे बराबरसे दामन बचाये॥

हालात इजाज़त नहीं देते कि समझ लूँ।
अब ज़हर मेरे ग़मकी दवा है कि नहीं है॥

आँख और हँसती रहे वक़्ते-विदाए-दोस्तपर।
इस वफ़ूरे-ज़ब्ते-कामिलको कहाँ तक रोइए॥
आँख—जैसे कोई जीनेकी क़सम देता हो।
गुफ़्तगू—जैसे सँवारे कोई क़िस्मत मेरी॥
—निगार दिसम्बर १९५४

'शादा' नसीरुद्दीन

गरूरे-हुस्न न था, शमअ़ बेनियाज़ न थी।
वोह ना-शनासे अदब थे, जले जो परवाने॥

'शारक़' मेरठी

दैरो-हरममें आकर हमने क्या-क्या सर टकराया है।
काश, किसी दिन पाँवपै तेरे सरको अपने झुका लेते॥
अपने वशकी बात नहीं थी, वर्ना हम भी ऐ 'शारक़'।
चुपके-चुपके अश्क बहाकर दिलकी आग बुझा लेते॥
—निगार मई १९५७

किसी तरह ख़लिशे - आर्ज़ू[1] मिटा न सके।
तेरे क़रीब भी आकर सकून[2] पा न सके॥
चमनमें देखे कोई उस कलीकी महरूमी[3]।
जो मुसकराये तो जी भरके मुसकरा न सके॥
न पूछ उसके मुक़द्दरकी ना - रसाईको[4]।
जो आप गुम हो मगर फिर भी तुझको पा न सके॥

१. अभिलाषाकी फाँस, २. चैन, ३. वीरानगी, ४. पहुँचके बाहरकी स्थितिको।

'शातिर' हकीमी

जो नज़रकी इल्तजा समझा नहीं।
हाथ उसके सामने फैलायें क्या॥
ज़िन्दगी क्या है मुसलसल इज़्तराब।
इज़्तराबे-दिलसे फिर घबरायें क्या॥
बैठना दुश्वार है आरामसे।
आस्ताने-यारसे उठ जायें क्या॥

—निगार अप्रैल १६४६

'शाद' आरफ़ी

क़फ़स अपना लिया मैंने, चमन ठुकरा दिया मैंने।
तुम्हीं सोचो तुम्हीं समझो कि ऐसा क्यों किया मैंने॥
इधर वह महवे-आराइश, इधर मैं महवे-नज़्ज़ारा।
न रक्खा आईना उसने न छोड़ा देखना मैंने॥
न जाने कौन रहज़नका क़दम हो कौन रहबरका।
मिटा डाला रहे-मंज़िलका इक-इक नक़्शे-पा मैंने॥

—तहरीक सितम्बर १६५६

'शाद' तमकनत

न जाने क्यो तबीयत हो गई अपनोंसे बेगाना।
तेरे ग़मकी बदौलत बेनियाज़ी बढ़ गई अपनी॥

तू जिसे ज़र्रा समझकर कर रहा है पायमाल।
देख उस ज़र्रेके सीनेमें कहीं दुनिया न हो॥

शबे-ग़म रोनेवाला रोते-रोते सो गया शायद।
जबींने-गुलपै शबनमकी, नमीं देखी नहीं जाती॥
अरे ओ बेकसीपै रोनेवाले! कुछ ख़बर भी है।
यही है ज़िन्दगी जो ज़िन्दगी देखी नहीं जाती॥

इक नई बुनियाद डालेंगे तजस्सुसकी 'शिफ़ा'।
हर गुबारे-कारवाँमें कारवाँ ढूँढेंगे हम॥

न होगा पास रहकर इन्तहाँ मरके-तसव्वुरका।
वोह जितना दूर हो सकता है, उतना दूर हो जाये॥

लबोंपै दम है किसीका, कोई सरे-बालीं।
'शिफ़ा'! हयातका दामन पकड़के आई है॥

धड़कते दिलमें 'शिफ़ा' तक रहा हूँ यूँ तारे।
किसीने जैसे कहा हो कि "आ रहा हूँ मैं"॥

शऊरे-ग़मकी आशुफ़्तासरी तक बात क्यों पहुँचे?
ख़िरदकी राहसे दीवानगी तक बात क्यों पहुँचे?
अगर दामन बचे, रहबरकी उलझनमें तो अच्छा है।
ख़राबे-जुस्तजूकी गुमरही तक बात क्यों पहुँचे?

यह राज़ वह है जो होंटों तक आ नहीं सकता।
कहाँ झुकाई जबीं और कहाँ झुका न सके॥
किसीके ग़मका रहा पास इस क़दर 'शारक़'!
कि भूल कर भी मुहब्बतमें मुसकरा न सके॥

—निगार सितम्बर १९५४

खाते रहे फ़रेब सँभलते रहे क़दम।
चलते रहे जुनूँका सहारा लिये हुए॥

की नहीं बल्कि हो गई 'शारक़'!
हैं कुछ ऐसी भी अपनी तक़सीरें॥

'शिफ़ा' ग्वालियरी

रवा रक्खा यहाँ तक एहतरामे-आशिक़ी मैंने।
हँसी आई कभी तो आँसुओंको सौंप दी मैंने॥

मिली ऐसी भी राहें मुझको अक्सर राहे-उल्फ़तमें।
कि ख़ुदको ऐ 'शिफ़ा'! घबराके ख़ुद आवाज़ दी मैंने॥

सबक़ ले मंज़िले-गोरे-ग़रीबाँ देखनेवाले!
चराग़ोंको तरसते हैं, चराग़ाँ देखनेवाले॥
क़फ़समें भी तुझे रहना कहीं दूभर न हो जाये।
अरे मुड़-मुड़के ओ सूए-गुलिस्ताँ देखनेवाले॥

'शैदा' खुरजवी

जिस दौरसे फ़रिश्ते दामनकशा थे या रब !
उस दौरसे गुज़रकर आया हूँ ज़िन्दगीमें ॥
ऐ दोस्त ! रफ्ता-रफ्ता तुझको भी ढूँढ लूँगा ।
खोया हूँ मैं अभी तो अपनी ही आगही में ॥
किस दर्जा शादमाँ हूँ, अपनी तबाहियों पर ।
कितना अज़ीज़ तर है मिटना भी आशिक़ीमें ॥
जो ख़िज़्रमें न उट्ठे, उम्रे दराज़ - पाकर ।
वोह ग़म उठाये हमने, दो दिनकी ज़िन्दगीमें ॥
क्या पूछता है 'शैदा' ! मुझसे मेरी तबाही ।
अन्धेर है लुटा हूँ, जल्वोंकी रोशनीमें ॥

'शौकत' परदेसी

मुद्दत हुई न जाने मुझे किस ख़यालमें ।
आई थी इक हँसी बड़ी संजीदगीके साथ ॥
'शौक़त' ! इस[1] हयातके[2] लमहोंमें[3] बारहा ।
हँसना पड़ा है मुझको भी सबकी हँसीके साथ ॥

—निगार मार्च १९५७

'सबा' अक़बराबादी

ऐ - हम अमीर मग्हल-ए-जिस्मो - जाँ रहे ।
किन मस्त बन्दिशोंमें तेरे नातवाँ रहे ॥
आँखोंसे बहके जो शबे-ग़म ,ज़ू-फ़िशाँ रहे ।
वह तो चिराग़ हो गये आँसू कहाँ रहे ? ॥

१. जीवनके, २. क्षणोंमें, ३. बार-बार ।

मुहब्बतकी कहानी हो, कि नफ़रतकी हिकायत हो।
किसीकी भी सही लेकिन किसी तक बात क्यों पहुँचे?
निखरना है तो निखरे अपने ही आईनेमें फ़ितरत!
किसी रुखसे निगाहे-आदमी तक बात क्यों पहुँचे?
मुहब्बत खुद ही हल करले मुहब्बतके मुअम्मोंको।
उलझनेको खुदी-ओ-बेखुदी तक बात क्यों पहुँचे?

—आजकल जनवरी १९५४

'शेरी' भोपाली

न जीनेपर ही क़ाबू है न मरनेका ही इमकाँ है।
हक़ीक़तमें इन्हीं मजबूरियोंका-नाम इन्साँ है॥

गजब है जुस्तजू-ए-दिलका यह अंजाम हो जाये।
कि मंज़िल दूर हो और रास्तेमें शाम हो जाये॥
अभी तो दिलमें हल्की-सी ख़लिश मालूम होती है।
बहुत मुमकिन है कल इसका मुहब्बत नाम हो जाये॥

ख़ताके बाद इनआमे-ख़ताका उनसे तालिब हूँ।
किसीने आजतक ऐसी भी गुस्ताख़ी न की होगी॥

---

१. भेद, २. मस्तक।

'शैदा' खुरजवी

जिस दौरसे फ़रिश्ते दामनकशा थे या रब !
उस दौरसे गुज़रकर आया हूँ ज़िन्दगीमें ॥
ऐ दोस्त ! रफ़्ता-रफ़्ता तुझको भी ढूँढ लूँगा ।
खोया हूँ मैं अभी तो अपनी ही आगही में ॥
किस दर्जा शादमाँ हूँ, अपनी तबाहियों पर ।
कितना अज़ीज़ तर है मिटना भी आशिक़ीमें ॥
जो ख़िज़्रसे न उट्ठे, उम्रे दराज़ - पाकर ।
वोह ग़म उठाये हमने, दो दिनकी ज़िन्दगीमें ॥
क्या पूछता है 'शैदा' ! मुझसे मेरी तबाही ।
अन्धेर है लुटा हूँ, जल्वोंकी रोशनीमें ॥

'शौकत' परदेसी

मुद्दत हुई न जाने मुझे किस ख़यालमें ।
आई थी इक हँसी चढ़ी मंज़िलोंके साथ ॥
'शौकत' ! हम[1] हयातके[2] लमहोंमें[3] बारहा ।
हँसना पड़ा है मुझको भी सबकी हँसीके साथ ॥

—निगार मार्च १६५७

'सबा' अकबराबादी

वे - हम अमीर मरहल-ए-जिस्मो - जाँ रहे ।
किन मस्त वन्दिशोंमें तेरे नातवाँ रहे ॥
आँखोंसे बहके जो शवे-ग़म ज़ू-फ़िशाँ रहे ।
वह तो चिराग़ हो गये आँसू कहाँ रहे ? ॥

१. जीवनके, २. क्षणोंमें, ३. बार-बार ।

ऐ हुस्ने-यार ! शर्म कि ये सोज़-सा है दिल ।
उस घरमें रोशनी भी न हो तू जहाँ रहे ॥
मसरूर हम नहीं तो 'सबा' इख़्तियार क्या ? ।
नाशादमाँ रखे गये नाशादमाँ रहे ॥

तबस्सुमको मेरे, मेरा ग़म न समझे ।
वोह भोले थे अन्दाज़े-मातम न समझे ॥
गलत - फहमियोंमें जवानी गुज़ारी ।
कभी वोह न समझे, कभी हम न समझे ॥
हमेशा रहे मुतमइन उम्र भरतापर ।
जियादा न माँगा, कभी कम न समझे ॥

महबूबे-माहेवशको गलेसे लगाके पी ।
थोडी-सी पीके उसको पिला, फिर पिलाके पी ॥
पाबन्द रोज़े-अब्र शबे-माहका न हो ।
पिलवायें जब हसीन, तक़ाज़े हवाके पी ॥

दुनियाए-बद नज़रकी नजरसे बचाके पी ।
यानी तअय्युनातके पर्दे गिराके पी ॥
वेकैफकी शराबका कोई मज़ा नहीं ।
इसमें ज़रा-सा ख़ूने-तमन्ना मिलाके पी ॥

तेरी महफिलमें मेरा बैठना बेलुत्फ था लेकिन—
ज़रा यह भी तो सुन लूँ मेरे उठ जानेपै क्या गुज़री ?
यह दीवारोंके छींटे ख़ूँके यह ज़ंजीरके टुकड़े ।
फ़िज़ा ज़िन्दाँकी शाहिद है कि दीवानेपै क्या गुज़री ?

यह अफ़साना बरहमनकी निगाहे-यासमे सुनिए।
कि पूजा छोड़ दी मैंने तो बुतख़ानेपै क्या गुज़री ॥

'सरशार' जैमिनी

बेकार, शोर, नालओ आहो-फ़ुग़ाँसे क्या।
चौंका भी कोई मौतके ख़्वाबे-गराँसे क्या ॥
इस डरसे हम न आपकी महफ़िलमें आ सके।
क्या पूछें आप निकले हमारी ज़बाँ से क्या ॥
बे-साख़्ता चमन-का - चमन मुसकरा उठा।
जाने कहा बहारने आकर ख़िज़ाँ से क्या ॥
कुछ फ़र्क़ इम्तयाज़े-गुलो-ख़ारमें[1] नहीं।
इन्साफ़ उठ गया है, यहाँ तक जहाँसे क्या ॥
इसको 'वही'[2] समझके जहाँने किया क़बूल।
जाने निकल गया था हमारी ज़बाँसे क्या ॥

—आजकल नवम्बर १६५४

'सरशार' भीमसेन

मिनम ज़ाहिर, जफ़ा साबित, मुसल्लिम बेवफ़ा तुम हो।
किसीको फिर भी प्यार आये तो क्या समझें कि क्या तुम हो ॥
चमनमें इख़्तलाते - रंग - ओ - बू से बात बनती है।
हमीं हम हैं, तो क्या, हम है, तुम्हीं तुम हो तो क्या तुम हो ॥

१. फूल और काँटेकी उपयोगितामें कोई अन्तर नहीं समझा जा रहा है, २. ईश्वरीय-सन्देश।

अँधेरी रात, तूफ़ानी हवा, टूटी हुई किश्ती।
यही असबाब क्या कम थे कि इसपर नाख़ुदा तुम हो॥
मबादा और इक फ़ित्ना बपा हो जाये महफ़िलमें।
मेरी शामत कहे तुमसे कि फ़ित्नोंकी बिना तुम हो॥
ख़ुदा बख़्शे वह मेरा शौक़में घबराके कह देना—
"किसीके नाख़ुदा होंगे मगर मेरे ख़ुदा तुम हो"॥
तुम अपने दिलमें ख़ुद सोचो हमारा मुँह न खुलवाओ।
हमें मालूम है, 'सरशार' जितने पारसा तुम हो॥

'सरशार' सिद्दीक़ी

मेरा हाल तूने पूछा, यह करम भी कम नहीं है।
तेरी पुरसिशोंके सदक़े, मुझे कोई ग़म नहीं है॥

चश्मे-गिरियाँकी क़सम मैंने ख़िज़ाँमें अक्सर।
अपने दामनमें गुलिस्ताँका गुलिस्ताँ देखा॥

कह दो अभी न करवटें बदले निज़ामे-दहर।
मेरी जबीने-शौक है, और पाए-यार है॥

बेख़ुदी देती है जब दिलको पयामे-ख़िल्वत।
तू ख़ुदा जाने उस आलममें कहाँ होता है?
—निगार मार्च १९४८

'सरीर' काबरी

लब हिलायें किसतरह एहसासे-दर्दे-दिलसे हम।
साँस लेते है तो लेते है बड़ी मुश्किलसे हम॥

मशअ़ले दाग़े-जिगरसे कल सजाया था जिसे।
लो निकाले जा रहे हैं, आज उसी महफ़िलसे हम ॥

'सरूर' आल अहमद

हर्फ़ आयेगा साक़ी ! तेरी फ़ैज़ बख़्शीपर।
यूँ मुझे गवारा है, अपनी तिश्ना कामी भी ॥
नग़मए-बहारॉमें तू कमी न कर बुलबुल !
हैं ख़िज़ाँ - परस्तोंमें, फ़स्ले-गुलके हामी भी ॥

'सरूर' तोसवी

ख़याले-बर्क़ो-मिज़ाजे-शरर बदल डालो।
सफ़ीने-दामोंसे ख़ौफ़ो-ख़तर बदल डालो ॥
फिरी-फिरी-सी जो अपने ही भाइयोंसे रहीं।
यह मस्लहत है कि अब वोह नज़र बदल डालो ॥
हवाएँ जिनसे निकलती हैं, ज़हर-आलूदा।
चमनसे अपने वोह बर्गो-शजर बदल डालो ॥
वफ़ा-ओ-महरके क़ाबिल बने हो दुनियामें।
जफ़ा-ओ-जौरकी शामो-सहर बदल डालो ॥

'सहर' महेन्द्रसिंह

नाउमीदी है अब तो वजहे-सकूँ।
फिर कोई महरबाँ न हो जाये ॥

ऐ नशेमनको फूँकनेवाले !
बर्क़ ख़ुद आशियाँ न हो जाये ॥

अँधेरी रात, तूफ़ानी हवा, टूटी हुई किश्ती।
यही असबाब क्या कम थे कि इसपर नाख़ुदा तुम हो॥
मवादा और इक फ़ित्ना बपा हो जाये महफ़िलमें।
मेरी शामत कहे तुमसे कि फ़ित्नोंकी बिना तुम हो॥
ख़ुदा बख़्शे वह मेरा शौक़में घबराके कह देना—
"किसीके नाख़ुदा होंगे मगर मेरे ख़ुदा तुम हो"॥
तुम अपने दिलमें ख़ुद सोचो हमारा मुँह न खुलवाओ।
हमें मालूम है, 'सरशार' जितने पारसा तुम हो॥

'सरशार' सिद्दीकी

मेरा हाल तूने पूछा, यह करम भी कम नहीं है।
तेरी पुरसिशोंके सदक़े, मुझे कोई ग़म नहीं है॥

चश्मे-गिरियोंकी क़सम मैंने ख़िज़ाँमें अक्सर।
अपने दामनमें गुलिस्ताँका गुलिस्ताँ देखा॥

कह दो अभी न करवटें बदले निज़ामे-दहर।
मेरी जबीने-शौक़ है, और पाए-यार है॥

बेख़ुदी देती है जब दिलको पयामे-ख़िल्वत।
तू ख़ुदा जाने उस आलममें कहाँ होता है?
—निगार मार्च १९४८

'सरीर' कावरी

लब हिलायें किसतरह एहसासे-दर्दे-दिलसे हम।
साँस लेते हैं तो लेते हैं बड़ी मुश्किलसे हम॥

'साबिर'

उनसे भी कर लिया है किनारा कभी-कभी।
यह ज़हर भी किया है गवारा कभी-कभी॥
आया हूँ ज़िन्दगीके तक़ाज़ोंको टाल कर।
पाकर तेरी नज़रका इशारा कभी-कभी॥
गो दर्दे-दिल हरीफ़े-ग़मे-ज़िन्दगी न था।
फिर भी लिया है उसका सहारा कभी-कभी॥
हंगामे-ऐश[1] बारहा आँसू निकल पड़े।
हँस-हँसके दौरे-ग़म भी गुज़ारा कभी-कभी॥
जैसे किसीने मुझको पुकारा हो दूरसे।
आया है यूँ ख़याल तुम्हारा कभी-कभी॥
तूफ़ाँमें ले गया हूँ सफ़ीनेको[2] मोड़कर।
आया है सामने जो किनारा कभी-कभी॥
'साबिर' न थी नज़रको ही जल्वोंकी आर्ज़ू।
जल्वोंने भी नज़रको पुकारा कभी-कभी॥

—शाहराह दिसम्बर १९५४

'साहिर' सोहनलाल

सितारे दमब-ख़ुद[3] हैं रात चुप है।
यह कुछ धीमे सुरोंमें गा रहे हैं॥
इन्हींका नाम हो शायद मुहब्बत।
ख़ता उनकी है, हम शर्मा रहे हैं॥

१. जीवन-सुखोंकी महफ़िलों, २. नावको, ३. निस्तब्ध।

क़फ़ससे सुए-आशियाँ देखता हूँ ।
कहाँ हूँ इलाही कहाँ देखता हूँ ॥

—आजकल १५ अक्टूबर १९४५

'साक़िब' कानपुरी

मैं था जहाने-इश्क़में तेरे वजूदका गवाह ।
कुछ न खुला यह राज़, क्यों तूने मुझे मिटा दिया ॥

तुझपै भी कुछ असर हुआ, उसकी हयाते-इश्क़का ।
हाय वोह ग़म-नसीब जो दर्दपै मुसकरा दिया ॥

कौन समझेगा इस लताफ़तको ।
तेरे इन्कारमें भी है इक़रार ॥
दर्दमें उसके ज़िन्दगी तो है ।
हो मुबारक यह इश्क़का इज़हार ॥
तेरी सूरत तो है सरापा रहम ।
हुस्न तेरा हैक्यों ग़रीब-आज़ार ॥

'सागर' बलवन्तकुमार

ज़मानेकी, न फ़लककी · जफ़ासे डरता हूँ ।
मगर गरीबकी इक बद्दुआसे डरता हूँ ॥
ख़ुदाकी शान वोह डरता नहीं ख़ुदासे भी ।
मगर मैं उस बुते-काफ़िर अदासे डरता हूँ ॥
ख़तर नहीं कोई बेगानोंकी जफ़ासे मुझे ।
मगर यगानोंकी मह्रो-वफ़ासे डरता हूँ ॥

—आजकल मार्च १९५३

'साबिर'

उनसे भी कर लिया है कनारा कभी-कभी।
यह ज़हर भी किया है गवारा कभी-कभी॥
आया हूँ ज़िन्दगीके तक़ाज़ोंको टाल कर।
पाकर तेरी नज़रका इशारा कभी-कभी॥
गो दर्दे-दिल हरीफ़े-ग़मे[1]-ज़िन्दगी न था।
फिर भी लिया है उसका सहारा कभी-कभी॥
हंगामे-ऐश बारहा आँसू निकल पड़े।
हँस-हँसके दौरे-ग़म भी गुज़ारा कभी-कभी॥
जैसे किसीने मुझको पुकारा हो दूरसे।
आया है यूँ ख़याल तुम्हारा कभी-कभी॥
तूफ़ाँमें ले गया हूँ सफ़ीनेको[2] मोड़कर।
आया है सामने जो कनारा कभी-कभी॥
'साबिर' न थी नज़रको ही जल्वोंकी आर्ज़ू।
जल्वोंने भी नज़रको पुकारा कभी-कभी॥

—तहरीक दिसम्बर १९५४

'साहिर' सोहनलाल

सितारे दम-ब-ख़ुद[3] हैं रात चुप है।
वह कुछ धीमे सुरोंमें गा रहे हैं॥
इसीका नाम हो शायद मुहब्बत।
ख़ता उनकी है, हम शर्मा रहे हैं॥

---

१. जीवन-दुखोंका प्रतिस्पर्द्धी, २. नावको, ३. निस्तब्ध।

कहीं तारे-नज़र उलझा हुआ है।
नक़ाब उठती नहीं शर्मा रहे हैं॥
भरी बरसातकी उफ़री जवानी।
घटाओंको पसीने आ रहे हैं॥
यह मौसम और इस मौसममें तौबा।
जनावे शैख़ क्या फ़र्मा रहे हैं॥
अजलको[1] रोकना आवाज़ देना।
ज़रा हम मैकदे[2] तक जा रहे हैं॥
किसीकी यादसे दिन-रात 'साहिर'।
दिले - बर्बादको बहला रहे हैं॥

—आजकल मई १९५४

'साहिर' भोपाली

मै नादाँ नहीं हूँ कि घबराके ग़मसे।
तेरे पास आकर तुझे दूर कर दूँ॥

मैं उस दम जोशमें अपना गरीबाँ चाक करता हूँ।
कि जब हाथोंमें आकर उनका दामन छूट जाता है॥
निगाहे-मस्ते साक़ीका यह इक अदना करिश्मा है।
नज़र मिलते ही बस हाथोंसे साग़र छूट जाता है॥
लरज़ जाते हैं, उस दम यह, ज़मीनो-आस्माँ 'साहिर'।
किसी बेकसके दिलका आसरा जब छूट जाता है॥

१. मृत्युको, २. मदिरालय तक।

वोह मेरे सब्रका कब तक मुक़ाबिला करते।
करम[1] वोह मुझपे न करते तो और क्या करते॥
बयाने - साहिरे - बर्बाद पहिले सुन लेते।
फिर आप चाहते जो कुछ भी फ़ैसला करते॥

बड़ी मुश्किलसे दिले-ज़ार[2] अभी बहला था।
हाय किस वक्त वफ़ाएँ तेरी याद आई हैं॥

पनाह माँगते हैं, वहशियोंसे वीराने।
तू ही बता कि कहाँ जायें तेरे दीवाने॥
भला यह कैफ़[3] कहाँ है, सरूरे-सहबामें[4]।
तेरी निगाह पै सदक़े[5] हज़ार मैख़ाने[6]॥

दुनिया वालोंकी हिक़ारतकी[7] नहीं परवा मुझे।
तुम न नज़रोंसे कहीं अपनी गिरा देना मुझे॥
देखते ही देखते 'साहिर' वोह मेरे हो गये।
देखती-की-देखती ही रह गई दुनिया मुझे॥

वफ़ूरे-दर्दमें[8] भी मुसकरा देता हूँ पुरसिशपर[9]।
क़िया है, क़िस्सए-ग़मको अब इतना मुख़्तसिर मैंने॥

—निगार मई १९५४

न आया जब पज़ीराईको[10] कोई दश्ते-वहशतमें।
तो अपने नक़्शे-पा पर आप सज्दा कर लिया मैंने॥

---

१. दया, २. दुःखी दिल, ३. आनन्द, बात, ४. शराबके नशेमें, ५. न्योछावर, ६. मदिरालय, ७. घृणाकी, ८. दर्दकी अधिकतामें, ९. हाल पूछनेपर, १०. स्वागतको, बात पूछनेवाला।

कहीं तारे-नज़र उलझा हुआ है।
नक़ाब उठती नहीं शर्मा रहे हैं॥
भरी बरसातकी उफरी जवानी।
घटाओंको पसीने आ रहे हैं॥
यह मौसम और इस मौसममें तौबा।
जनावे शैख़ क्या फर्मा रहे हैं॥
अजलको[1] रोकना आवाज़ देना।
ज़रा हम मैकदे[2] तक जा रहे हैं॥
किसीकी यादसे दिन-रात 'साहिर'।
दिले - बर्बादको बहला रहे हैं॥

—आजकल मई १९५४

'साहिर' भोपाली

मैं नादाँ नहीं हूँ कि घबराके ग़मसे।
तेरे पास आकर तुझे दूर कर दूँ॥

मैं उस दम जोशमें अपना गरीबाँ चाक करता हूँ।
कि जब हाथोंमें आकर उनका दामन छूट जाता है॥
निगाहे-मस्ते साक़ीका यह इक अदना करिश्मा है।
नज़र मिलते ही बस हाथोंसे साग़र छूट जाता है॥
लरज़ जाते हैं, उस दम यह, ज़मीनो-आस्माँ 'साहिर'।
किसी बेकसके दिलका आसरा जब छूट जाता है॥

---

१. मृत्युको, २. मदिरालय तक।

क़यामत-ख़ेज़ अगर तूफ़ाने-ग़म उट्ठा तो क्या परवा ।
कि अब तो डूबकर पैदा किनारा कर लिया मैंने ॥
यही क्या कम सज़ा है, बेकसी-ए-इश्क़की 'साहिर' !
कि उनसे छुटके भी जीना गवारा कर लिया मैंने ॥

नज़रसे पुरसिशे-ग़म[1] बार-बार क्या कहना ।
यह पासे - ख़ातिरे - उम्मीदवार क्या कहना ॥

मरना ही पड़ा मुझको जीनेके लिए 'साहिर' !
इल्ज़ामे - करम आते जब हुस्नके सर देखा ॥

अपने - ही सर लिया इल्ज़ामे-तबाही मैंने ।
मुझसे देखा न गया उनका पशेमाँ होना ॥

ज़माना कुछ भी कहले, कुछ भी समझे, कुछ नहीं परवा ।
मगर वह तो अभी तक मुझको दीवाना नहीं कहते ॥

ताबे-नज़ारा जब नहीं, फिर बज़्मे-नाज़में ।
किस मुँहसे लेके दीदका अर्मान जाइए ॥
दिल तोड़कर न जाइए 'साहिर'का इस तरह ।
बर्बादे - आर्ज़ूका कहा मान जाइए ॥

—निगार मार्च १९५७

सिराज' लखनवी

मेरी मुन्तज़िर शबे-तारको कभी दिन बनाके भी देख ले ।
कभी बर्क़ बनके चमक भी जा, कभी मुसकराके भी देख ले ॥

१. दुःखोंकी पूछ-ताछ ।

यह है इस्तग़नाकी इन्तहा कि बना हुआ हूँ ख़ुद आईना ।
कभी मेरी हसरते-दीदको सरे-बाम आके भी देख ले ॥
किसी रोज़ जान भी डालकर इसे ज़िन्दगीए-दवाम दे ।
तेरी याद दर्द तो बन चुकी इसे दिल बनाके भी देख ले ।
तेरे इक इशारेपै कितने दिल मिले ख़ाको-ख़ूँमें ख़ुशी-ख़ुशी ।
मैं निसार नीची निगाहके यह नज़र उठाके भी देख ले ॥
मेरे आशियानेमें हयातके कहीं कोई घर भी ख़ुशीका है ।
मैं निसार तेरे अताबके कभी मुसकराके भी देख ले ॥
मेरा दिल भी शमए-ख़मोश है, इसे बख़्श ताबिशे-ज़िन्दगी ।
कभी अपनी ख़िल्वते-नाज़में यह दिया जलाके भी देख ले ॥
मैं 'सिराज' अश्क नसीब हूँ यही एक मेरा इलाज है ।
तेरे जीमें आये तो बेवफ़ा कभी मुसकराके भी देख ले ॥
—तहरीक सितम्बर १९५४

यह माना दिल तो यह चाहता है, बहार देखें ख़िज़ाँसे पहले ।
मगर कहा मानो हम-नशीनो, क़फ़स बने आशियाँसे पहले ॥
तलिस्मफ़र्दा जन्नते-नज़र है, हरमका जल्वा फ़रेबे-नज़र है ।
यह सच है लेकिन यह सर उठे तो कहीं तेरे आस्ताँसे पहले ॥
मैं लाख हर्फ़े-दुआ हूँ, ख़ुदा करे उनका सामना हो ।
जो दिलसे आलम गुज़र गया है, नज़र पढ़ेगी ज़बाँसे पहले ॥
न तूरे-मूसाका था तसव्वुर, न शोर दारो-रसन उठा था ।
वह एक हम भी नहीं जिन्होंकी निस्बत दिलोंकी कूचोंसे पहले ॥
गुज़र दामन तो अपना देखें अज़र नहीं 'सिराज' हो फ़क़ीर ।
लहूकी एक बूँद भी नहीं गिरी थी अदालतोंसे पहले ॥

क़यामत-खेज़ अगर तूफ़ाने-ग़म उट्ठा तो क्या परवा।
कि अब तो डूबकर पैदा किनारा कर लिया मैंने ॥
यही क्या कम सज़ा है, बेकसी-ए-इश्क़की 'साहिर'!
कि उनसे छुटके भी जीना गवारा कर लिया मैंने ॥

नज़रसे पुरसिशे-ग़म[1] बार-बार क्या कहना।
यह पासे - ख़ातिरे - उम्मीदवार क्या कहना ॥

मरना ही पड़ा मुझको जीनेके लिए 'साहिर'!
इल्ज़ामे - करम आते जब हुस्नके सर देखा ॥

अपने - ही सर लिया इल्ज़ामे-तबाही मैंने।
मुझसे देखा न गया उनका पशेमाँ होना ॥

ज़माना कुछ भी कहले, कुछ भी समझे, कुछ नहीं परवा।
मगर वह तो अभी तक मुझको दीवाना नहीं कहते ॥

ताबे-नज़ारा जब नहीं, फिर बज़्मे-नाज़में।
किस मुँहसे लेके दीदका अर्मान जाइए ॥
दिल तोड़कर न जाइए 'साहिर'का इस तरह।
बर्बादे - आर्ज़ूका कहा मान जाइए ॥

—निगार मार्च १९५७

'सिराज' लखनवी

मेरी मुन्तज़िर शबे-तारको कभी दिन बनाके भी देख ले।
कभी बर्क़ बनके चमक भी जा, कभी मुस्कराके भी देख ले ॥

१. दुःखकी पूछताछ।

दहन तक[1] जज़्बए - तौसीफ़[2] होंटों तक सलाम आया।
ज़बाने-हम-नफ़स पर हाय किस काफ़िरका नाम आया॥
असीरी[3] थी मुक़द्दर बस असीरीका पयाम[4] आया।
किसीने ज़ुल्फ़ बिखराई न कोई लेके दाम[5] आया॥
ढले थे हुस्नके साँचेमें रोज़े-वस्लके लम्हे।
न वैसी सुबह फिर आई न वैसा लुत्फ़े-शाम आया॥
तबस्सुम[6] खेलता है फिर लबो-रुख़सार[7] पर उनके।
कोई दिल 'मिद्रक' शायद कूए-नाकामीमें[8] काम आया॥

—तहरीक मई १९५५

'सुलेमान' अरीब

ऐ सर्वे-रवाँ! ऐ जाने-जहाँ! आहिस्ता गुज़र, आहिस्ता गुज़र।
जी भरके तुझे मैं देख तो लूँ, बस इतना ठहर, बस इतना ठहर॥

न जाने कुफ़्रका अंजाम अपने क्या होता?
हमारे दौरमें लेकिन कोई ख़ुदा न हुआ॥
न हो सका जो मदावाए-ज़ख़्मे लाला-ओ-गुल[9]।
बचाके आँख चमनमें गुज़र गई है सबा[10]॥
गुज़र रहा हूँ मुसलसल इक ऐसे आलममें।
हयात देके मुझे जैसे कोई भूल गया॥

१. मुँहतक, २. प्रशंसा करनेका भाव, ३. क़ैद भाग्यमें थी, ४. सन्देश ५. जाल, ६. मुसकान, ७. होंटों और कपोलोंपर, ८. असफलताके मार्गमें, ९. फूलोंके ज़ख्मोंका इलाज, १०. हवा।

ठहर ज़रा ऐ ग़मे - मुहब्बत, तेरा तो हर रंग मुस्तक़िल है।
चुका लूँ यह आये दिनका क़िस्सा ज़रा ग़मे-दो जहाँसे पहले ॥
'सिराज' इस दिलको फूल बनना भरे चमनमें न रास आया।
नज़र लगी ख़ुश्क हो गया ख़ुद बहार बनकर ख़िज़ाँसे पहले ॥

—तहरीक अक्तूबर १९५४

मै कबका रोमें इन अश्कोंकी अबतक बह गया होता।
इन आँखोंपर तरस खाकर यह किसने आस्तीं रख दी ?

न आया आह आँसू पूँछना भी ग़मके मारोंको।
निचोड़ी भी नहीं दामनपै यूँ ही आस्तीं रख दी ॥

यहीं उठकर चला आये अगर काबेका जी चाहे।
कि अब तो नक़्शे-पाए-यार पर हमने जबीं रख दी ॥

—शाइर सालाना नवम्बर १९५१

'सिद्दक़' जायसी

हज़ार सईकी गुंचोंने दिल लुभानेकी।
उड़ा सके न अदा तेरे मुसकरानेकी ॥
वह हँसते आये लगावट तो देख आनेकी।
मिसाल बन गई रौनक़ ग़रीबख़ानेकी ॥
कली-कलीको है हसरत कि फूल बन जाये।
ख़बर है गर्म गुलसिताँमें किसीके आनेकी ॥
सुना है 'सिद्दक़' हुआ सूए-करबला राही।
तमाम उम्रमें इक बातकी ठिकानेकी ॥

दहन तक[1] जज़्बए - तौसीफ़[2] होंठों तक सलाम आया।
ज़बाने-हम-नफ़स पर हाय किस काफ़िरका नाम आया ॥
असीरी[3] थी मुक़द्दर बस असीरीका पयाम[4] आया।
किसीने ज़ुल्फ़ बिखराई न कोई लेके दाम[5] आया ॥
ढले थे हुस्नके साँचेमें रोज़ो-वस्लके लम्हे।
न वैसी सुबह फिर आई न वैसा लुत्फ़े-शाम आया ॥
तबस्सुम[6] खेलता है फिर लबो-रुख़सार[7] पर उनके।
कोई दिल 'सिद्दीक़' शायद कूए-नाकामीमें[8] काम आया ॥

—तहरीक मई १९५५

'सुलेमान' अरीब

ऐ सर्वे-रवाँ ! ऐ जाने-जहाँ ! आहिस्ता गुज़र, आहिस्ता गुज़र।
जी भरके तुझे मैं देख तो लूँ, बस इतना ठहर, बस इतना ठहर ॥

न जाने गुलका अंजाम अबके क्या होगा ?
हमारे दौरमें लेकिन कोई जुदा न हुआ ॥
न हो सका जो मदावाए-ज़ख्मे लाल-ओ-गुल[9]।
बजाय ओस चमनसे गुज़र गई है सबा[10] ॥
गुज़र रहा हूँ मुसल्सल इक ऐसे आलमसे।
हयात देके मुझे जैसे कोई भूल गया ॥

१. मुँहतक, २. प्रशंसा करनेका भाव, ३. क़ैद भाग्यमें थी, ४. सन्देश ५. जाल, ६. मुस्कान, ७. होंठ और कपोलोंपर, ८. असफलताके मार्गमें, ९. फूलोंके ज़ख्मोंका इलाज, १०. हवा।

'हज़ी' हक़ी

इश्क़के अन्दाज़ भी अब हुस्नसे कुछ कम नहीं।
जिस तरफ़ गुज़रे हम इक दुनिया तमाशाई हुई॥
उफ़! वोह अरबाबे-हविस[1] खुलने न पाये जिनके राज़[2]।
हाय! वह अहले-मुहब्बत[3] जिनकी रुसवाई[4] हुई॥
क्यों न हो अब हर अदा उसकी 'हज़ी' मुझको अज़ीज़[5]।
ज़िन्दगी आख़िर तो है, उसकी ही ठुकराई हुई॥
—निगार जुलाई १९५४

'हफ़ीज़' तायब

हो गई ऐसी क्या ख़ता हमसे?
हो जो तुम यूँ ख़फ़ा-ख़फ़ा हमसे॥
ज़ीस्तकी उलझनोंसे ज़ाहिर है।
ख़ुश नहीं आजकल ख़ुदा हमसे॥
रू-बरू यारके हुआ न बयाँ।
ज़हे-तक़दीर! मुद्दआ हमसे॥

'हफ़ीज़' प्रोफ़ेसर

गहे ज़ख़्म है, गहे राहते-मरहम है इश्क़।
गहे-शोलओ-गहे गिरयए-शबनम है इश्क़॥
हर क़ैदसे हर बन्दसे आज़ाद है इश्क़।
बेगाना ए-रस्मे - ग़मे - उफ़ताद है इश्क़॥

---

१. कामुक, २. भेद, ३. सच्चे प्रेमी, ४. बदनामी, ५. प्यारी।

हबीबअहमद सद्दीक़ी एम० ए०

इलाही ! करके तय किन रफ़अतोंको मैं कहाँ पहुँचा ।
कि यकसाँ पड़ रही हैं अब निगाहें दोस्त-दुश्मनपर ॥

वोह सितमगर है, जफ़ाजू है, सितम-ईजाद है ।
इब्तदाए-रस्मे-उल्फ़त फिर भी की, नाचार की ॥

ख़ूगरे-जौर ही बना देते ।
तुमसे तो यह भी उम्रभर न हुआ ॥

फ़ुर्क़तमें-बेहिजाबीहाए - हुस्ने - दोस्त था ।
लोग यह समझे कि मूसा तूरपर बेहोश था ॥

यूँ देखता हूँ बर्क़को अल्लाहरे बेदिली ।
जैसे चमनमें मेरा कहीं आशियाँ नहीं ॥

ऐ दिल ! सरे-नियाज़को क्या क़ैदे-संगे-दर ।
काबा ही क्या बुरा है जो यह आस्ताँ नहीं ॥

ख़यालमें बसा हुआ है, आस्तानः ख़्याले ।
वोह सिज्दाराज़ अजनबी कि जिसमें गुफ़्तगू नहीं ॥

मुझको फ़राग़ते-रंगो-बू न हुआ ।
यूँ भी अक्सर बहार आई है ॥

तिश्ना-सा दीदा, ग़म ना-आश्ना, पैमानए-दस्तदाँ ।
इतनी किस क़दर मासूमतर पुरदर्दगी होगी ?

उससे क्या हाल्ते - आशोबे-तमन्ना कहिए।
जिसको अन्दाज़ए-बेताबिए-तूफ़ाँ ही नहीं॥

क्या मसर्रतका भरोसा ? ऐतबारे-ग़म नहीं।
दीदए-गिरियाँ भी मुद्दत हो गई पुरनम नहीं॥

सितम है अब भी उम्मीदे-वफ़ापै जीता है।
वोह कम नसीब कि शाइस्तये-वफ़ा भी नहीं॥

तक़द्दुस शैख़का तसलीम, लेकिन पूछिए इतना।
मुहब्बत भी कभी मिनजुमलए-आदाबे-दीं होगी ?

—निगार सितम्बर १९४८

'हसरत' तरमजवी

मुमकिन हो तो इक दिन आ जाओ, या ख़ुद ही बुलाओ तुम हमको।
और यह भी तुम्हारे बसमें न हो, तो याद न आओ तुम हमको॥

ग़म बढ़ते-बढ़ते ग़म न रहे, इतना तो बढ़ाओ ग़म दिलका।
रोनेके लिए आँसू न रहें, इतना तो रुलाओ तुम हमको॥

'हसरत' सुहवाई

वोह पलकोंपै आ ही गया बनके आँसू।
ज़बाँ पर न हम ला सके जो फ़साना॥

'हुरमत' उलइकराम

ग़मे-दुनियाका नहीं कोई कनारा लेकिन—
फिर भी मुमकिन नहीं दुनियासे कनारा ऐ दोस्त !
मेरी सीरतके ख़तो-ख़ाल नज़र क्या आते ?
मुझको दुनियाने बहुत दूरसे देखा ऐ दोस्त !
दूसरे मुझको न समझें तो कोई बात न थी।
शिकवा यह है कि मुझे तू भी न समझा ऐ दोस्त !
मुझसे हरबार मसर्रतने छुड़ाया दामन।
मुझको सौबार दिया ग़मने सहारा ऐ दोस्त !

—निगार मार्च १६४७

मौजोंने खे दिये हैं सफीने हज़ार-हा।
उट्ठा है इस तरह भी तलातुम कभी-कभी ॥

औरोंको कम मुझीको तआ़ज्जुब बहुत हुआ।
आया है गर लबोंपै तबस्सुम कभी-कभी ॥

शाइर जून १६५०

मुक़ाम ऐसा भी इक आता है राहे-जिन्दगानीमें।
जहाँ मंज़िल भी गर्दे-कारवाँ मालूम होती है ॥

वोह ग़म कि जिससे मयस्सर क़रार होता है ।
वोह ग़म तो रहमते-परवर्दिगार होता है ॥
न मुसकराके उठाओ नज़र, मेरी जानिब ।
कि अब ख़ुशीका तसव्वुर भी बार होता है ॥
यह कहके डूब गया आज सुबहका तारा—
"अजीब चीज़ ग़मे-इन्तज़ार होता है" ॥

'हैरत' अब्दुलमजीद

वज़अदारी लिये जाती है किसीके दर तक ।
वरना क्या हाथ बजुज़ रंजो-मलाल आता है ॥
बेनियाज़ीका किसीकी वोह असर है दिलपर ।
अब ब-मुश्किल ही कोई लबपै सवाल आता है ॥
असरे-गर्दिशे-तक़दीर इलाही तौबा ।
औज आने नहीं पाता कि ज़वाल आता है ॥
जुरअते-अर्ज़े-तमन्ना तो नहीं कम लेकिन ।
अपनी कोताहिए-क़िस्मतका ख़याल आता है ॥
जैसे ख़ुद हमने यह दरियाफ़्त किया था उनसे ।
ख़तमें लिक्खा हुआ अग़ियारका हाल आता है ॥

—आजकल मार्च १९५१

'हुबाब' तरमजी

हस्तिए-इश्क़ जब मिटा लेंगे।
हुस्नके दिलपे फ़तह पा लेंगे॥
क्या ख़बर थी कि तेरे दीवाने।
मौतको ज़िन्दगी बना लेंगे॥

तिश्ना कामाने-शौक़ आख़िरकार।
बे पिये तिश्नगी बुझा लेंगे॥
अब नई रोशनीके मतवाले।
इक नया आफ़ताब उछालेंगे॥

तुम न आये तो ख़िल्वते-ग़मका।
आलमे - यासमें मज़ा लेंगे॥
है सलामत अगर जुनूँ अपना।
ख़ुदको खोकर हम उनको पा लेंगे॥

जब न भड़केंगे अश्कके शोले।
दामने - हुस्नकी हवा लेंगे॥
ज़िन्दगी धूप-छाँव है ऐ दोस्त!
ग़मसे उकताके मुसकरा लेंगे॥

इश्क़की राहमें फ़ना होकर।
हुस्ने - मासूमकी दुआ लेंगे॥
क्या पता था कि आप यूँ भी कभी?
दिल चुराकर नज़र चुरा लेंगे॥

वोह ग़म कि जिससे मयस्सर क़रार होता है ।
वोह ग़म तो रहमते-परवर्दिगार होता है ॥
न मुसकराके उठाओ नज़र, मेरी जानिब ।
कि अब ख़ुशीका तसव्वुर भी बार होता है ॥
यह कहके डूब गया आज सुबहका तारा—
"अजीब चीज़ ग़मे-इन्तज़ार होता है" ॥

'हैरत' अब्दुलमजीद

वज़अदारी लिये जाती है किसीके दर तक।
वरना क्या हाथ बजुज़ रंजो-मलाल आता है ॥
बेनियाज़ीका किसीकी वोह असर है दिलपर ।
अब ब-मुश्किल ही कोई लबपै सवाल आता है ॥
असरे-गर्दिशे-तक़दीर इलाही तौबा ।
ओज आने नहीं पाता कि ज़वाल आता है ॥
जुरअते-अर्ज़े-तमन्ना तो नहीं कम लेकिन ।
अपनी कोताहिए-क़िस्मतका ख़याल आता है ॥
जैसे ख़ुद हमने यह दरियाफ्त किया था उनसे ।
ख़तमें लिखा हुआ अग़ियारका हाल आता है ॥

—आजकल मार्च १९५२

लेखककी अन्य रचनाएँ

उर्दू-शाइरी और उसका इतिहास

उत्तरप्रदेश-सरकार-द्वारा पुरस्कृत

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन—

"यह एक कवि-हृदय, साहित्य पारखीके अपने जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। गोयलीयजी-जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने संक्षेपमें उन्होंने उर्दू-छन्द और कविताका चतुर्मुखीन परिचय कराया। समझकी पंक्ति-पंक्तिमें उनकी अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मैं समझता हूँ इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।"

द्वितीय संस्करण

पृष्ठ सं० ६४० ● मूल्य आठ रु०

डॉ० अमरनाथ झा—

"गोयलीयजीने बड़े परिश्रमसे इस पुस्तकको लिखा है। इसमें सभी प्रमुख कवियोंका उल्लेख है, उनके जीवनकी मुख्य बातें लिख दी गयी हैं; जिस वातावरणमें उन्होंने कविता लिखी, उसका वर्णन है। उनके काव्य-गुरु और शिष्योंके नाम बताये गये हैं। उनकी रचनाओंके गुण दोष उदाहरणोंके साथ वर्णन किये गये हैं। इसके पढ़नेसे उर्दू कविताका पूरा परिचय मिलता है।" ● प्रथम भाग

पृ० सं० [illegible]८४ ● मूल्य आठ रु०

हम बदल देंगे इश्क़के दस्तूर।
अपनी राहें अलग निकालेंगे ॥
डूबने वाले बहरे-ग़ममें 'हुबाव'।
कब तक एहसाने-नाख़ुदा लेंगे ?

—सहरीक सितम्बर १९५४

मौलिक कहानियाँ

आज दैनिक—

"ये कहानियाँ चरित्रनिर्माण तथा अतीतके अनुभवोंसे हमें लाभान्वित करती हैं। 'गहरे पानी पैठ' में श्री गोयलीयने जिन रत्नोंको हिन्दी संसारमें सुलभ किया है, निश्चय ही उनसे हमारा जीवन सुखी और सम्पन्न हो सकता है। लेखनशैलीमें प्रभावोत्पादकता और मार्मिकता है। पुस्तक मननीय और संग्रह योग्य है।"

द्वितीय संस्करण

पृष्ठ सं० २२६ ● मूल्य ढाई रुपये

विशालभारत—

"प्रस्तुत पुस्तकमें जीवन निर्माण एवं उत्साह, प्रेरणा तथा शान्ति प्रदान करनेवाली १०२ लघु कथाएँ हैं। इनका आकार लघु है, पर भावगुम्फनकी दृष्टिसे गागर जैसी प्रौढ़ता, विशालता तथा विस्तार है।"

नवभारतटाइम्स दिल्ली—

'जिन खोजा तिन पाइयाँ' को यदि हिन्दीका हितोपदेश कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यही अनुभव, यही विवेक।

द्वितीय सं०

पृ० १२ ● रुपये

शेर-ओ-सुख़न [भाग २]

प्राचीन उस्ताद शाइरोंके वर्त्तमानयुगीन ख्यातिप्राप्त प्रतिष्ठित योग्य उत्तराधिकारी—साक़िब, असर, दिल, रियाज़, जलील, सफ़ी, अज़ीज़ आदि १४ लखनवी शाइरोंका जीवन-परिचय एवं कलाम।

शेर-ओ-सुख़न [भाग ३]

देहलवी रंगके शाइरे-आज़म—शाद अज़ीमाबादी, हसरत, फ़ानी, असग़र, जिगर, यगाना, अमजद, वहशत, कैफ़ी, आदिका परिचय एवं चुना हुआ कलाम।

शेर-ओ-सुख़न [भाग ४]

सीमाब, जोश मलसियानी, महरूम ताजवर, अफ़सर हैदरी, आसी उदनी, बेख़ुद, नूह, साइल, आग़ा शाइर, नसीम आदिका चुना हुआ कलाम और परिचय।

शेर-ओ-सुख़न [भाग ५]

प्राचीन और वर्तमान ग़ज़लगोईपर तुलनात्मक अध्ययन; हरजाई, बेवफ़ा, ज़ालिम माशूक़के एवज़ नेक और पाक हबीबका तसव्वुर, रोने सिसूरनेकी प्रथा बन्द, रजो-ग़मका मुसकान भरा स्वागत, निराशावादका अन्त।

प्रारम्भसे १९५८ तककी घटनाओंका ग़ज़लपर प्रभाव।

सजिल्द • आकर्षक कवर

द्वितीय संस्करण • प्रत्येक भागका मूल्य तीन रुपये